MATS UNIVERSITY

NAAC GRADE A+ ACCREDITED UNIVERSITY

MATS CENTRE FOR OPEN & DISTANCE EDUCATION

हिन्दी निबंध एवं अन्य विधाएं

बैचलर ऑफ़ आर्ट्स (बी.ए.)

चतुर्थ सेमेस्टर

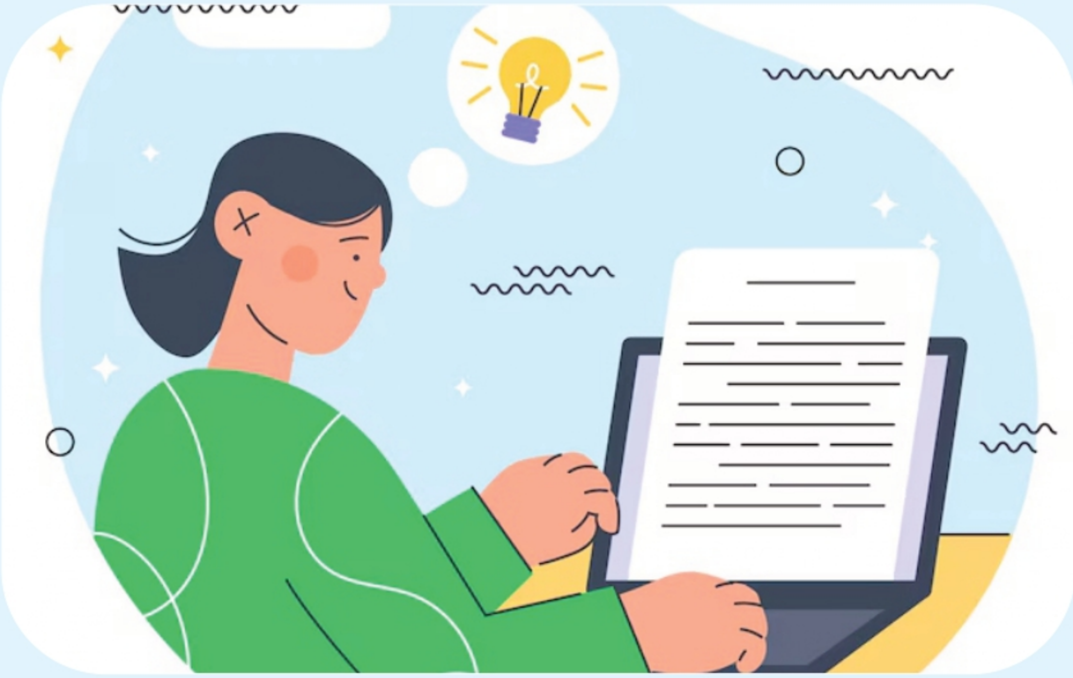

SELF LEARNING MATERIAL

COURSE DEVELOPMENT EXPERT COMMITTEE

1- Prof.(Dr.) Reshma Ansari, HOD Hindi Department , MATS University Raipur Chhattisgarh
2- Dr. Sudhir Sharma , Subject Expert ,HOD Hindi Department, Kalyan College, Bhilai
3- Dr. Kamlesh Gogia Associate Professor, MATS University ,Raipur, Chhattisgarh
4- Dr. Sunita Shashikant Tiwari Associate Professor, MATS University Raipur Chhattisgarh
5- Dr. Rajesh Kumar Dubey , Subject Expert, Principal , Shahid Rajeev Pandey Government College ,Bhatagaon , Raipur ,Chhattisgarh

COURSE COORDINATOR

Prof.(Dr.) Reshma Ansari, HOD Hindi Department , MATS University Raipur Chhattisgarh

COURSE /BLOCK PREPARATION

Prof.(Dr.) Reshma Ansari, HOD Hindi Department , MATS University Raipur Chhattisgarh

March, 2025

ISBN-978-93-49916-59-3

@MATS Centre for Distance and Online Education, MATS University, Village- Gullu, Aarang, Raipur-(Chhattisgarh)

All rights reserved. No part of this work may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form, by mimeograph or any other means, without permission in writing from MATS University, Village- Gullu, Aarang, Raipur-(Chhattisgarh)

Printed & Published on behalf of MATS University, Village-Gullu, Aarang, Raipur by Mr. Meghanadhudu Katabathuni, Facilities & Operations, MATS University, Raipur (C.G.)

Disclaimer-Publisher of this printing material is not responsible for any error or dispute from contents of this course material, this is completely depends on AUTHOR'S MANUSCRIPT.
Printed at: The Digital Press, Krishna Complex, Raipur-492001(Chhattisgarh)

अनुक्रमणिका

माड्यूल	विषय –हिन्दी निबंध और अन्य विधाएँ – IV	
माड्यूल – 1	हिन्दी निबंध विधा : परिचय प्रतिनिधि– निबंधकार	1-132
	इकाई – 1 हिन्दी निबंध विधा का परिचय	1-5
	इकाई – 2 पं. बालकृष्ण भट्ट, महावीर प्रसाद द्विवेदी	6-11
	इकाई – 3 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, गुलाबराय	12-21
	इकाई – 4 डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. रामविलास शर्मा, हरिशंकर परसाई	22-29
माड्यूल – 2	गद्य की अन्य विधाएँ और संकलित रचनाकार	
	इकाई – 5 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी (सन् 1907–1979), बाबू गुलाबराय (सन् 1888–1963 ई.)	30-37
	इकाई– 6 राहुल सांकृत्यायन (सन् 1893–1963), रामधारी सिंह दिनकर (सन् 1908–1974 ई.) सियाराम शरण गुप्त (सना 1895–1963 ई.)	38-45
	इकाई– 7 डॉ. पदमसिंह शर्मा 'कमलेश' (सन् 1915–1974 ई.) हरिशंकर परसाई (सन् 1942 ई.), हजारी प्रसाद द्विवेदी	46-55
	इकाई– 8 गुलाबराय, शिरीष के फूल (ललित निबन्ध)	56-70
माड्यूल – 3	गद्य की अन्य विधाएँ और संकलित रचनाकार	
	इकाई– 9 मेरी दैनिकी का एक पृष्ठ (आलकथा), अथातो घुमक्कड़ –जिज्ञासा (रिपोर्ताज)	71-77
	इकाई– 10 दिनकर की डायरी (डायरी), मुंशी जी (संस्मरण)	78-85
	इकाई – 11 सूर्यकांत त्रिपाठी' निराला' (भेंट–वार्ता), आँगन में बैगन (हास्य व्यंग्य)	86-95
माड्यूल – 4	गद्य की अन्य विधाएँ और संकलित रचनाकार	
	इकाई – 12 राहुल सांकृत्यायन	96-110
	इकाई – 13 रामधारी सिंह 'दिनकर'	111-122
	इकाई – 14 सियाराम शरण गुप्त पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश हरिशंकर परसाई	123-132

Acknowledgement

The Material (Pictures and images) we have used is purely for educational purpose. Every effort has been made to trace the copyright holders of material reproduced in this book. Sould any infringement have occurred, the publishers and editors apologize and will be pleased to make the necessary corrections in future of this book.

माड्यूल – 1 हिन्दी निबन्ध एवं अन्य विधाएँ

इकाई – 1 हिन्दी निबंध विधा का परिचय

हिन्दी निबन्ध : उद्भव और विकासप्रमुख निबन्धकारों का परिचय

बातचीत

रामायण

'मानस' की धर्म–भूमि

भारतीय संस्कृति जीवेम शरदः शतम् लेखक और जनता

घायल बसन्त

पं० बालकृश्ण भट्टा

महावीर प्रसाद द्विवेदी ,

आचार्य रामचन्द्र षुक्ल ,

गुलाबराय ,

डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ,डॉ० रामविलास शर्मा,

हरिशंकर परसाई,

गद्य को अन्य विधाएँ

संकलित रचनाकार

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी (सन् 1907–1979)

बाबू गुलाबराय (सन् 1888–1963 ई0)

राहुल सांकृत्यायन (सन् 1893–1963)

रामधारी सिंह दिनकर (सन् 1908 दृ 1974 ई०) सियारामारण गुप्त (सना 1895 – 1963 ई०)

डॉ० पदमसिंह षर्मा 'कमलेष' (सन् 1915 – 1974 ई०) १० हरिशंकर परसाई (सन् 1942 ई०)

हजारी प्रसाद द्विवेदी

गुलाबराय

1.शिरीश के फूल (ललित निबन्ध)

3.मेरो दैनिकी का एक पृष्ठ (आलकथा)

4. अथातो घुमक्कड़ – जिज्ञासा (रिपोर्ताज)

दिनकर की डायरी (डायरी)

4. मुंषी जी (संस्मरण)
5. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' (भेंट–वार्ता)
6. आँगन में बैगन (हास्य व्यंग्य)

राहुल सांकृत्यायन
रामधारी सिंह 'दिनकर'
सियाराम षरण गुप्त पद्मसिंह षर्मा 'कमलेष हरिषंकर परसाई

हिन्दी निबन्ध एव अन्य विधाएँ

हिन्दी निबन्ध : उदभव और विकास

हिन्दी में गद्य का प्रयोग होने के प्रमाण भक्तिकाल से मिलते हैं। रीतिकाल में भी अनेक गा रचनाएँ प्राप्त होती हैं। इनमें रामप्रसाद निरंजनी का 'हिन्दी योग वसिश्ठ' प्रमुख है। यह गद्य ब्रजभाशा में है तथा पंडिताऊपन के कारण षिथिल है।

आचार्य रामचन्द्र षुक्ल ने हिन्दी साहित्य का काल विभाजन करके आधुनिक काल को गद्य काल उपनाम दिया है और इसकी समय–सीमा संवत् 1901 से अब तक (सन् 1844 से अब तक) स्वीकार की है। षुक्लजी की मृत्यु को लगभग 60 वर्श हो चुके हैं, पर यह विभाजन अभी तक ज्यों–का–त्यों चला आ रहा है।

हिन्दी में गद्य रचना खड़ी बोली में आरम्भ करने का श्रेय भारतेन्दुजी को है। भारतेन्दु युग में अनेक अच्छे निबन्धकार हुए हैं, पर हिन्दी खड़ीबोली में निबन्ध रचना आरम्भ करने का गौरव भारतेन्दु को ही प्राप्त है। भारतेन्दु ने स्वयं अच्छे निबन्ध लिखे और अपने परिकर के अनेक लेखकों को निबन्ध–रचना की प्रेरणा दी। भारतेन्दु के अतिरिक्त इस युग के निबन्धकार प्रतापनारायण मिश्र, बालकृश्ण भट्ट, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमवन 'ए लाला श्रीनिवास दास, अम्बिकादत्त व्यास, बालमुकुन्द गुप्त, राधाचरण गोस्वामी आदि हैं।

निबन्ध की परिभाशा – हिन्दी का निबन्ध षब्द अंग्रेजी के एस्से (म्ेंल) का समानार्थक अंग्रेजी के विचारकों ने निबन्ध की अनेक परिभाशाएँ प्रस्तुत की हैं। इन परिभाशाओं से हिन्दी साहित्य के विद्यार्थियों का कुछ भी भला होने की सम्भावना नहीं है। इसी कारण हिन्दी के विद्वानों की परिभाशाएँ प्रस्तुत की जा रही हैं।

(1) रामचन्द्र षुक्ल ''आधुनिक लक्षणों के अनुसार निबन्ध उसी को कहना चाहिए, जिसमें व्यक्तित्व अर्थात् व्यक्तिगत विषेशताएँ हो । व्यक्तिगत विषेशता का यह मतलब नहीं है कि उसके प्रदर्षन के लिए विचारों कीश्रृंखला रखी ही न जाय, या जान–बूझकर जगह–जगह से तोड़ दी जाये। निबन्ध–लेखक अपने मन की प्रवृत्ति के अनुसार स्वच्छन्द गति से इध र–उधर छूटी हुई सूत्र– षाखाओं पर विचरता चलता है। यही उसको अर्थ–सम्बन्धी व्यक्तिगत विषेशता है। निबन्ध लेखक जिध ार चलता है, उधर अपनी सम्पूर्ण मानसिक सत्ता अर्थात् बुद्धि और भावात्मक हृदय दोनों को साथ लिये रहता है। ''

यदि गद्य कवियों की कसोटी है तो निबन्ध गद्य की कसौटी है।

(2) बाबू गुलाबराय '' निबन्ध उस गद्य रचना को कहते हैं, जिसमें सीमित आकार के भीतर किसी विशय का वर्णन या प्रतिपादन एक विषेश निजीपन, स्वच्छन्दता,

सौशठव और सजीवता से तथा आवष्यक संगति और सम्बद्धता के साथ किया गया हो।

(3) डॉव स्वामसुन्दर दास 'निबन्ध उस लेख को कहना चाहिए, जिसमें किसी गहन विशय पर विस्तारपूर्वक और पाण्डित्यपूर्ण विचार किया गया हो। निबन्ध आख्यायिका और पितम तमंत के बीच की वस्तु है।

गीत रचना

(4) उद्यनाथ नलिन

– '' निबन्ध स्वाधीन चिन्तन और निष्चल अनुभूतियों का सरस सजीव और मर्यादित महद्यात्मक प्रकाषन है।

(5) डॉ० विजयेन्द्र नातक विचारों की विष्वखलता के भीतर सन्निहित एकसूत्रता, लेखक के व्यक्तित्व और वार्तालाप की षैली को निबन्ध कहते हैं।''

(6) डॉव लक्ष्मीसागर वार्श्णेय '' निबन्ध–लेखक मत का प्रतिपादन नहीं करता, सिद्धान्त स्थिर नहीं करता, 'वह मनोनीत विशय को अपने व्यक्तित्व के रस में पागकर प्रकट करता है।''

(7) डॉव बलवन्त लक्ष्मण कोतमिरे – "जहाँ तक निबन्ध के मूल स्वरूप का प्रष्न है, उसमें विशय से विशयी की प्रधानता होनी चाहिए, क्योंकि उसके पीछे निजी अनुभव की प्रेरणा काम करती है। उसमें उसका अपना मत, अपना दर्षश्टकोण, अपनी अभिन्नता रहती हैं, इसलिए और प्रकार की रचना में तटस्थता बरती जा सकती है, लेखक अपने व्यक्तित्व को ओझल रख सकता है, पर निबन्ध में यह कदापि संभव नहीं है। इसमें 'मैं' को बोलना ही पड़ता है। अनेक विशय और रूपों का सम्मिश्रण होते हुए भी निबन्ध सबसे निराला एक रसायन है। इस रसायन में जो सुगन्ध ज्यादा उभरती है, जो स्वाद सब पर प्रधान हो उठता है, वह व्यक्तित्व है। व्यक्तित्व के समावेष से ही निबन्ध में अन्य तत्वों का स्वयं सन्निवेष हो जाता है, जिसका सम्बन्ध हृदय से है, क्योंकि व्यक्तित्व में भावात्मक और बोधात्मक दोनों ही पक्ष होते हैं।

(8) डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी अब किसी नवीन ढंग के निबन्धों का प्रचलन हुआ है, वे तर्कमूलक की अपेक्षा व्यक्तिगत अधिक हैं। ये व्यक्ति के स्वाधीन चिन्तक की उपज हैं। ''

(9) डॉ0 एच0 एन0 द्विवेदी – "निबन्ध निबन्धकार के उस व्यक्तित्व का निश्कपट और पारदर्षी दर्पण है, जिसमें वस्तु व्यक्तिगत तो होती है, पर व्यक्तित्वविहीन नहीं हो जाती। निबन्धकार के लिए पाठकों या श्रोताओं के प्रति सख्य का सम्बन्ध ही समीचीन होता है। वर्जनाओं से मुक्त सरलता, स्थायी भावों के उत्कर्श या अपकर्श

और षील के वैविध्य मात्र से ही वह वैयक्तिकता नहीं आती है, जो निबन्ध के लिये आवष्यक है।

आवष्यक है – उसकी अप्रत्याषित भंगिमा। इसी से हमने संचारी भावों की रोचकता या संचरण रमणीयता पर इतना बल दिया है।''

निबन्धों के भेद – मनीशियों, चिन्तकों और विचारकों में निबन्ध के चार प्रकार स्वीकार किये हैं–

(1) वर्णनात्मक– किसी वस्तु को स्थिर रूप में देखकर जो वर्णन किया जाता है, वह वर्णनात्मक निबन्ध कहलाता है।

(2) विवरणात्मक किसी वस्तु को गतिषील रूप में देखकर अथवा कहीं से सम्बद्ध जानकारी पढ़कर या सुनकर जिस निबन्ध की रचना की जाती है, उसे विवरणात्मक निबन्ध कहा जाता है।

(3) विचारात्मक – जिन निबन्धों में विचार और तर्क की प्रधानता होती है, उन्हें विचारात्मक

निबन्ध कहा जाता है।

(4) भावात्मक – यह निबन्ध भाव– प्रधान होता है तथा आवेगषीलता से सुषोभित होता है। इनके अतिरिक्त भी निबन्धों के गवेशणात्मक, आलोचनात्मक, ललित–निबन्ध ा आदि अनेक भेद किये जाते हैं। पर उनका समावेष निबन्ध के उक्त चार प्रकारों में ही हो जाता है। डॉ० रामगोपाल सिंह चौहान ने विशय–वस्तु की दश्टि से निबन्ध के दो प्रकार माने हैं। वे निम्नलिखित हैं

(1) विशयनिश्ठ

इन निबन्धों में विशय की स्वतंत्र रूप से तथ्यपरक एवं तर्क–पुश्ट व्याख्या होती है। प्रतिपाद्य विशय–वस्तु का विष्लेशण करते हुए लेखक किसी निश्कर्श पर पहुँचने का प्रयास करता है।

(2) व्यक्तिनिश्ठ इन निबन्धों में लेखक अपने मन की स्वच्छन्द तरंगों से प्रभावित विशय का निर्बाध विवेचन करता है, जिसमें, आत्मीयता और निजीपन का समावेष होता है। इस प्रकार के निबन्धों में विचारों में से विचार, भावों में से भाव निकलकर विचार–गुच्छ या भाव–गुच्छ का रूप धारण कर लेते हैं।

उपर्युक्त दोनों प्रकार के निबन्धों के विशय में यह कहना कदापि सही नहीं होगा कि व्यक्तिनिश्ठ में विशयनिश्ठता नहीं होती और विशयनिश्ठ में व्यक्तिनिश्ठता नहीं होती। दोनों में ही दोनों का समावेष होता है। अन्तर केवल प्रधानता का व्यक्तिनिश्ठ निबन्धों के कुछ विद्वानों ने सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक आदि भेद किये हैं, किन्तु ये सभी वर्ग अपूर्ण एवं अवैज्ञानिक हैं, क्योंकि सामाजिक विशय में सभी वर्ग समाहित हो जाते हैं।

इकाई – 2 पं. बालकृष्ण भट्ट, महावीर प्रसाद द्विवेदी

हिन्दी निबन्ध का विकास– हिन्दी–निबन्ध के विकास को निम्नलिखित चार युगों में विभाजित किया गया है.

1. प्रथम उत्थान काल
2. द्वितीय उत्थान काल
3. तष्तीय उत्थान काल
4. चतुर्थ उत्थान काल हिन्दी का प्रथम निबन्ध

भारतेन्दु युग (सन् 1857 से 1900 तक)

द्विवेदी युग (सन् 1901 से 1920 तक)

षुक्ल युग (सन् 1921 से 1940 तक)

षक्लोत्तर युग (सन् 1941 से अब तक)

भारतेन्दु हरिष्चन्द्र जी को हिन्दी निबन्ध का जन्म दाता अथवा बीजारोपणकर्ता माना जाता है। आचार्य रामचन्द्र षुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास में भारतेन्दु के किसी निबन्ध का नाम लेकर हिन्दी का पहला निबन्ध तो नहीं बताया हैं, पर उन्होंने जो लिखा है, उससे यह ध्वनि निकलती है कि प्रथम हिन्दी निबन्ध ा लेखक भारतेन्दु ही थे। षुक्ल जी का इस विशय पर मन्तव्य इस प्रकार है– उन्होंने (भारतेन्दु ने) कवि वचन सुधा' नाम की एक पत्रिका निकाली, जिसमें पहले पुराने कवियों की कविताएँ छपा करती थीं, पर पीछे इसमें गद्य लेख भी रहने लगे। सन् 1930 में उन्होंने 'हरिष्चन्द्र मैग्जीन' नाम की एक भासिक पत्रिका निकाली, जिसका नाम 8 संख्याओं के उपरान्त 'हरिष्चन्द्र चन्द्रिका' हो गया। हिन्दी गद्य का ठीक परिश्कृत रूप पहले–पहल इसी 'चन्द्रिका' में प्रकट हुआ।''

1 पथम उत्थान काल (भारतदु युग – इस युग की समय–सीमा सन् 1857 से 1900 तक

मानी गयी है। इस युग के प्रमुख निबन्ध लेखकों का परिचय प्रस्तुत है

'हरिषचन्द्र चन्द्रिका' में भारतेन्दु के ही लेख प्रकाषित होते थे। बहुत समय तक निबन्ध को 'लेख' कहा जाता था। उक्त उदाहरण में आया 'लेख' षब्द इस बात का प्रमाण हैं कि हिन्दी के प्रथम निबन्धकार भारतेन्दु ही थे।

(1) भारतेन्दु युग – इसकी समय–सीमा सन् 1857 से 1900 तक है। इस युग के प्रमुख निबन्धकार भारतेन्दु है। उन्होंने स्वयं निबन्ध लिखे तथा अपने साथियों को प्रेरणा दी। भारतेन्दु हरिषचन्द्र के अतिरिक्त भारतेन्दु काल के अन्य लेखक पक्ष बालकृश्ण भट्ट, पं० प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमवत' पं० केषवराम भट्ट हैं।

डॉ० श्रीमोहन द्विवेदी ने इस युग के निबन्धों तथा उनकी भाशा के सम्बन्ध में लिखा है

"हिन्दी गद्य के साहित्य की अन्य विधाओं की भाँति यह युग निबन्ध–साहित्य का भी षैषव काल था, परन्तु फिर भी इस युग के निबन्ध–साहित्य का अपना एक स्वतन्त्र महत्व है। इस युग के निबन्धकारों ने वर्णनात्मक पद्धति को अपनाकर सामयिक घटनाओं, सामाजिक जीवन, ऋतु–पर्व आदि को वर्ण्य विशय के रूप में चुनकर निबन्ध लिखे हैं। विशय का व्यापकत्व, अनेकरूपता, रोचकता, भारतीयता एवं आत्मीयता इस युग के निबन्धों की प्रमुख विषेशताएँ हैं, किन्तु यह युग हिन्दी निबन्ध के विकास का, प्रथम उत्थान का था । अतएव इस काल की रचनाओं में व्यवस्था, प्रौढता एवं भाशा–सम्बन्धी प्राज्जवलता आदि का अभाव स्वाभाविक ही है। इस युग के निबन्ध प्रायः पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाषित हुए हैं, संग्रह रूप में नहीं। इनमें व्याख्या–सौश्ठव का अभाव है और भाशा में व्याकरण विशयक अषुद्धियाँ भी हैं। विचारों में विनोदात्मकता और षैली में रूपकत्व और आत्मभाव संस्पर्षित है। भाशा व्याकरण की दृश्टि से अषुद्धियों से पूर्ण है, तथापि मुहावरों और लोकोत्तियों के प्रचुर प्रयोग के कारण रोचक हो गयी है। भाशा को सरल, सरस तथा स्वाभाविक बनाने के लिए देषी–विदेषी, देषज, ग्रामीण, षुद्ध आदि सभी प्रकार के षब्दों का प्रयोग किया गया है। अतएव भारतेन्दु–काल में अस्थिरता, अपरिपक्वता, पूर्वीपन, ब्रजभाशापन एवं पण्डिताऊपन आ गया है।''

भारतेन्दु युग में भारतेन्दु ने तो कम निबन्धों की रचना की, पर उनके युग के पत्र–सम्पादकों ने पर्याप्त निबन्ध लिखे। ये सम्पादक अपने साहित्यिक पत्रों में स्वयं के निबन्ध प्रकाषित करते थे। भारतेन्दु 'कवि वचन सुधा' और 'हरिषचन्द्र चन्द्रिका' का सम्पादन करते थे। भारतेन्दु ही नहीं, उनके युग के सभी निबन्धों में सुगठित होने के गुण के स्थान पर षिथिलता है। ऐसा जान पड़ता है कि लेखक अपने मित्रों से घिरा बैठा है और मन की मौज में बातें कर रहा है। भारतेन्दु के निबन्ध 'भारतवर्शोन्नति कैसे हो सकती है' से कुछ पंक्तियाँ उद्धरत हैं 'राजे–महाराजों को अपनी पूजा, भोजन, झूठी गप से छुट्टी नहीं। हाकिमों को कुछ तो सर्कारी काम घेरे रहता है, कुछ वक्त घुड़दौड़ थियेटर में गया। कुछ समय बचा तो उनको क्या गरज है कि हम गरीब, गन्दे, काले आदमियों से मिलकर अपना अuमोल समय खोवें। ब सवह मसल वही । 'तुम्हें गैरों से कब फुरसत, हम अपने गम से कब खाली। चलो बस हो चुका मिलना, न तुम खाली न हम खाली ।''

(2) पं० बालकृश्ण भट्ट इलाहाबाद से 'हिन्दी प्रदीप' पत्र निकालते थे। यह मासिक पत्र था। ये संस्कृत के विद्वान और अंग्रेजी के जानकार थे। इनकी भाशा में संस्कृत, अंग्रेजी, उर्दू और लोकभाशा के षब्दों को उदारतापूर्वक स्थान दिया गया है। आपका व्यक्तित्व खरा था, इसलिए आपकी षैली में खरापन है।

(3) पं० प्रतापनारायण मिश्र कानपुर से 'ब्राह्मण' नामक पत्र निकालते थे। इस पत्र के लिए मिश्रजी ने अनेक विशयों पर निबन्धों की रचना की। ये अपनी विनोदप्रियता के लिए विषेश रूप से प्रसिद्ध थे। आपने अपनी भाशा में वैसवारे की कहावतों और षब्दों का निःसंकोच प्रयोग किया है। आपने 'बात', 'मनोयोग', 'वृद्ध', भौं जैसे षीर्शकों पर निबन्ध लिखे हैं। आपके निबन्ध 'समझदार की मौत है' से आपकी भाशा के उदाहरण के रूप में कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं

'सच है 'सबतें भले विमूढ, जिन्हें न व्यापै जगत गति।' मजे से पराई जमा गएक बैठना, खुषामदियों स गप मारा करना, जो कोई तीज–त्यौहार आ पड़ा तो गंगा में बदन धो आना, गंगा–पुत्र को चार पैसे देकर सेंत मेंत में धरम–मूरत, ध ारम–औतार का खिताब पाना, संसार–परमार्थ दोनों बन गये, अब काहे की हैं–हैं और काहे की खै–खै

? आफत तो बेचारे जिन्दादिलों की है। ''

जव ंजंततमत चौधरी 'प्रेमंत' ने 'आनन्दकादम्बिनी' पत्रिका का प्रकाषन

बदौनारायण किया था। आचार्य रामचन्द्र षुक्ल के अनुसार प्रेमधन जी ने यह पत्रिका अपने ही उमड़ते हुए विचारों और भावों को अंकित करने के लिए आरम्भ की थी। इसमें अन्य लेखकों के निबन्ध नाममात्र को निकलते थे। ये अपने नाटकों आदि को भी धारावाहिक रूप में अपनी इस पत्रिका में प्रकाषित करते थे। आपकी यह पत्रिका गद्य के मध्य संस्कृत के श्रंगार रस के ष्लोकों, कवित्तों, सवैयों, गजलों, षेरों आदि से सुषोभित रहती थी। आपके निबन्ध 'परिपूर्ण पावस' से भाशा के उदाहरण के रूप में कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं–

''जैसे किसी देषाधीष के प्राप्त होने से देष का रंग ढंग बदल जाता है, तद्रूप पावस के आगमन से इस सारे संसार ने भी दूसरा रंग पकड़ा, भूमि हरी–भरी न होकर नाना प्रकार की घासों से सुषोभित भई, मानो मारे मोद के रोमांच की अवस्था को प्राप्त भई। सुन्दर हरित पत्रावलियों से भरित तरुगनों की सुहावनी लताएँ लिपट लिपट मानो मुग्ध मयंकमुखियों को अपने प्रियतमों को अनुरागालिंगन की विधि बतातीं। ''

(5) पं० केषवराम भट्ट – इन्होंने 'बिहार–बंधु' नामक पत्र निकाला और उसके लिए 'बिहार बंधु प्रेस' की स्थापना की।

2. द्वितीय उत्थान काल (द्विवेदी युग) – इस युग की समय–सीमा सन् 1901 से 1920 तक है। कहा जाता है कि भारतेन्दु ने जिस गद्य का बीजारोपण किया, महावीर द्विवेदी ने उसे पल्लवित किया। महावीर प्रसाद द्विवेदीजी इण्डियन प्रेस (प्रयाग) से प्रकाषित होने वाली मासिक पत्रिका 'सरस्वती' के सम्पादनक रहे। द्विवेदीजी भाशा के डिक्टेटर कहे जाते हैं। भारतेन्दु काल के गद्य में जो व्याकरण–सम्बन्धी भूलें तथा निबन्धों में जो षिथिलता थी, उसे समाप्त करके आपने उसके स्थान पर निबन्धों को कसावट प्रदान की। आपने स्वयं अच्छे निबन्ध लिखे और दूसरों को लिखने की प्रेरणा दी। भारतेन्दु काल में निबन्ध का अर्थ

की भाशा बहुत चलती, सजीव और विनोदपूर्ण होती थी। किसी प्रकार का विशय हो, गुप्तजी की लेखनी उस पर विनोद का रंग चढ़ा देती थी। वे पहले उर्दू के एक अच्छे लेखक थे, इससे उनकी हिन्दी बहुत चलती और फड़कती हुई होती थी। वे अपने विचारों को विनोदपूर्ण वर्णनों के भीतर ऐसा लपेटकर रखते थे कि उनका आभास बीच–बीच में ही मिलता था। उनके विनोदपूर्ण वर्णनात्मक विधान के भीतर fविचार और भाव लुके–छिपे रहते थे।''

'षिवषम्भु का चिट्ठा' प्रबन्ध से 'आषा का अन्त' निबन्ध की कुछ पंक्तियाँ आपकी भाशा और षैली के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत है––

''कभी इस देष में आकर आपने गरीबों की ओर ध्यान न दिया। कभी यहाँ की दीन, भूखी प्रजा की दषा का विचार न किया। कभी दस मीठे षद सुनाकर यहाँ के लोगों को उत्साहित नहीं किया, फिर विचारिए तो गालियाँ यहाँ के लोगों को आपने कि कृपा के बदले में दी? पराधीनता की सबके जी में बड़ी भारी चोट होती है। पर महारानी विक्टोरिया के सदय बर्ताव ने यहाँ के लोगों के जी से वह दुःख भुला दिया था। ''

(4) बाबू ष्यामसुन्दर दास प्रयाग विष्वविद्यालय से बी०ए० उत्तीर्ण करके आपने नागरी प्रचारिणी सभा के निर्माण का सराहनीय कार्य किया। इनकी हिन्दी सेवाओं के लिए इन्हें 'साहित्य वाचस्पति' तथा 'डी० लिट्०' की उपाधियाँ प्राप्त हुईं। आपने अत्यन्त गंभीर विशयों को सरल एवं सुबोध रूप में प्रस्तुत करने में सफलता प्राप्त की। आप उस समय बनारस हिन्दू विष्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष थे, जब 'भाशा–विज्ञान' और 'काव्य–षास्त्र' जैसे विशयों पर हिन्दी में कोई सामग्री प्राप्त नहीं थी। आप रात में जो नोट्स तैयार करते थे, उन्हीं को अगले दिन कक्षा में पढ़ाते थे। बाद में इन्हीं को पुस्तकाकार

प्रकाषित किया गया है। आचार्य रामचन्द्र षुक्ल ने आपकी भाशा–षैली और निबन्ध कला के विशय में अपनी सम्मति इस प्रकार व्यक्त की है

आप जैसे हिन्दी के लेखक हैं, वैसे ही बहुत अच्छे वक्ता भी। आपकी भाशा इस विषेशता के लिये बहुत दिनों से प्रसिद्ध है कि उसमें अरबी–फारसी के विदेषी षब्द नहीं आते। आधुनिक सभ्यता के विधानों के बीच की लिखा–पढ़ी के ढंग पर हिन्दी को ले चलने में आपकी लेखनी ने बहुत कुछ योग दिया है। हिन्दी पुस्तकों की खोज के विध न द्वारा आपने साहित्य का इतिहास, कवियों के चरित और उन पर प्रबंध आदि लिखने का बहुत–सा मसाला इकट्ठा करके रख दिया है। षिक्षोपयोगी तीन पुस्तकें – 'भाशा–विज्ञान', 'हिन्दी भाशा और साहित्य' तथा 'साहित्यालोचन' भी आपने लिखी या संकलित कीं। ष्यामसुन्दरदाजी का स्वभाव गंभीर था। वही गंभीरता आपकी भाशा और षैली में देखी जा सकती है।

‘भारतीय साहित्य की विषेशताएँ’ से आपकी भाशा और षैली के उदाहरण के रूप में कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत है–

भारतीय साहित्य की दूसरी बड़ी विषेशता उसमें धार्मिक भावों की प्रचुरता है। हमारे यहाँ धर्म की बडी व्यापक व्यवस्था की गयी है और जीवन के अनेक क्षेत्रों में उसको स्थान दिया गया है। धर्म में धारण करने की षक्ति है, अतः केवल अध्यात्म पक्ष में ही नहीं, लौकिक आचार–विचार तथा राजनीति तक में उका नियंत्रण स्वीकार किया गया है।’ (5) चन्द्रधर षर्मा गुलेरी – गुलेरीजी ने ‘सरस्वती’ के प्रकाषन के कुछ समय पष्चात् जयपुर से ‘समालोचक’ मासिक पत्र निकाला। गलेरीजी ने आलोचनात्मक निबन्धों के अतिरिक्त व्यंग्य निबन्धों की रचना भी की है। इनका व्यंग्य इनसे पूर्ववर्ती व्यंग्य की अपेक्षा अधि क परिश्कृत और षक्तिषाली है। ‘मारेसि मोहि कुठाँव’, ‘कछुआ धरम’, ‘संगीत’ आदि निबन्धों में आपने समाज की रूढिवादिता पर तीखे, किन्तु षिश्ट व्यंग्यों के द्वारा प्रहार किया है।

चन्द्रधर षर्मा ‘गुलेरी’ दृश्टि से उनका अवदान

डॉ० हरिहर नाथ द्विवेदी ने गुलेरीजी के विशय में लिखा है द्विवेदी युग के अत्यन्त महत्वपूर्ण निबन्धकार हैं। परिमाण की अत्यल्प हैं– उनके केवल दो ही निबन्ध– कछुआ धरम’ और ‘मारेसि मोहि कुठाँव मिलते हैं। लेकिन कथा साहित्य में जैसे – ‘उसने कहा था, उन्हें अमर कर देने के लिए काफी है, वैसे ही निबन्धों का आदर्ष संग्रह कोई कितना ही छोटा क्यों न हो उन्हें नहीं छोड़ा जा सकता । साहित्य के इतिहासकार सदा से इस बात के लिए सजग रहे हैं कि कृतियों का उल्लेख मूल भावना के आधार पर किया जाय, न कि राषि की विपुलता को निकश मानकर। एक भी छोटी कृति यदि षिल्प, भाव या विचार की दृश्टि से मौलिक है तो उसे उचित स्थान दिया जाना चाहिए।

गुलेरी जी की भाशा–षैली एवं कथ्य को प्रस्तुत करने के हेतु उनके निबन्ध ‘कछुआ ध रम’ से कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं

बहुत वर्श पीछे की बात है। समुद्र पार के देषों में और धर्म पक्के हो चले। लूटते, भारते थे ही, बेधरम भी कर देते थे। बस, समुद्र यात्रा बन्दा कहाँ तो राम के बनाये सेतु का दर्षन करके जहा हत्या मिटती थी और कहाँ नाव में जाने वाले द्विज का प्रायष्चित कराकर भी संग्रह बन्दा वही ‘कछुआ धरम’ ढाल के अन्दर बैठे रहो।’’

(6) अध्यापक पूर्ण सिंह – इन्हें सरदार पूर्ण सिंह भी कहा जाता है आज जिसे ललित निबन्ध कहा जाता है. उसी प्रकार के उनको निबन्ध हैं। आज जिसे पह–गीत अथवा गद्य–काव्य नाम दिया जाता है, उसका उदाहरण पूर्ण सिंह जी का कोई भी गद्यांष बन सकता

इनकी निबन्ध शैली अनेक दृश्टियों से निजी शैली है इनके विचार भावुकता की लपेट में लिपटे हुए होते हैं। कहीं ये कवित्व की ओर मुड़ जाते हैं, कहीं उपदेषक से प्रतीत होते हैं, कहीं इनकी वाणी के पटल पर समाज के मार्मिक चित्र उभरकर आते हैं और कहीं प्रकृति के मनोरम दृष्य । विचारों और भावनाओं के क्षेत्र में ये किसी संप्रदाय से बंधकर नहीं चलते। इसी प्रकार षब्द चयन द्वारा भी ये अपने स्वच्छन्द स्वभाव को प्रकट करते हैं। ('गद्य गरिमा' से साभार)

इनके निबन्ध 'आचरण की सभ्यता' की ये पंक्तियाँ इनकी भाशा शैली और भाव जगत् का प्रमाण देंगी

इकाई – 3 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, गुलाबराय

'' धर्म और आध्यात्मिक विद्या के पौधे को ऐसी आरोग्य वर्धक भूमि देने के लिए जिसमें वह सदा फलता रहे, फूलता रहे, यह आवष्यक है कि बहुत से हाथ एक अनन्त प्रकृति के ढेर को एकत्र करते रहें। धर्म की रक्षा के लिए क्षत्रियों को सदा ही कमर बांधे हुए सिपाही बने रहने का भी तो यही अर्थ है। ''

(3) तष्तीय उत्थान काल (षुक्ल युग) – निबन्ध–साहित्य में षुक्ल युग की समय–सीमा सन् 1921 से 1940 तक स्वीकार की गई है। यह समय भारत की राजनीति में महात्मा गाँध के नेतत्व का था। यही समय हिन्दी कविता में छायावाद और प्रगतिवाद का रहा है। प्रथम महायुद्ध स` उपजी निराषा की प्रतिक्रिया के रूप में छायावाद और रहस्यवाद आया तथा छायावाद के भाव पक्ष की प्रतिक्रिया के रूप में प्रगतिवाद ने आँखें खोलीं। आचार्य रामचन्द्र षुक्ल ने इस युग के आरम्भ की निबन्ध की स्थिति की दो टूक विवेचना इस प्रकार की है.

विष्वविद्यालयों के उच्च षिक्षाक्रम के भीतर हिन्दी–साहित्य का समावेष हो जाने के कारण उत्काट कोटि के ऐसे निबन्धों की, जिनकी असाधारण शैली या गहन विचारधारा पाठाकें को मानसिक श्रमसाध्य नूतन उपलब्धि के रूप में जान पड़े, जितनी ही अधिक आवष्यकता है, उतने ही कम वे हमारे सामने आ रहे हैं। निबन्ध ा की जो स्थिति हमें द्वितीय उत्थान में दिखाई पड़ी, प्रायः वही स्थिति इस वर्तमान काल में भी बनी हुई है। अर्थ–वैचित्र्य और भाशा–शैली का नूतन विकास जैसा कहानियों के भीतर प्रकट हुआ

है, वैसा निबन्ध के क्षेत्र में नहीं देखने में आ रहा है जो उसका बहुत उपयुक्त स्थान है। इस युग के प्रमुख निबन्धकारों का परिचय प्रस्तुत है

(1) रामचन्द्र षुक्ल – षुक्लजी इस युग के सर्वश्रेश्ठ निबन्धकार हैं। इसी आधार पर इस युग का नामकरण हुआ है। रामचन्द्र षुक्ल अब तक के सभी हिन्दी–निबन्ध ा–लेखकों से भिन्न थे। आपने षुद्ध आलोचनात्मक निबन्धों की रचना तो की ही, इसके अतिरिक्त आपने मनोवैज्ञानिक निबन्धों की भी रचना की। उदाहरण के रूप में 'चिन्ता', 'श्रद्धा', 'करुणा', 'क्रोध'

आदि के नाम दिये जा सकते हैं। मनोभावों सम्बन्धी निबन्ध एक प्रकार से व्याख्यात्मक कहे जा सकते हैं। इन निबन्धों में भी षुक्लजी व्यंग्य–विनोद के छींटे बिखराना नहीं भूले हैं। ये निबन्ध कुछ स्थानों पर संस्मरण भी बन गये हैं। इन निबन्ध में षुक्लजी का स्वतन्त्र चिन्तन तो प्रतीत होता ही है, उनके भावुक हृदय की भी झाँकी मिल जाती है। षुक्लजी का स्वतन्त्र चिन्तन एवं हृदय की भावुकता मिलकर निबन्ध के कथ्य को गंभीरता, सार्थकता तथा उदात्तता प्रदान करते हैं। इस प्रकार स्पश्ट है कि षुक्लजी ने न केवल विवेचनात्मक निबन्धों की रचना की, अपितु पाठकों के सामने गद्य षैली का सर्वथा नवीन, गंभीर और मोहक रूप भी प्रस्तुत किया। उदाहरण के रूप में षुक्लजी के 'उत्साह' निबन्ध से कुछ पंक्तियाँ हैं

प्रस्तुत

''दुःख के वर्ग में जो स्थान भय का है, वही स्थान आनन्द के वर्ग में उत्साह का है। भय में हम प्रस्तुत कठिन स्थिति के नियम से विषेश रूप से दुःखी और कभी–कभी उस स्थिति से अपने को दूर रखने के लिए प्रयत्नवान् भी होते हैं। उत्साह में हम आने वाली कठिन स्थिति के भीतर साहस के अवसर के निष्चय द्वारा प्रस्तुत कर्म सुख की उमंग से अवष्य प्रयत्नवान् होते हैं। उत्साह में कश्ट या हानि सहने की दृढ़ता के साथ–साथ कर्म में होने के आनन्द का योग रहता है। साहसपूर्ण आनन्द की उमंग का नाम उत्साह है। कर्म–सौन्दर्य के उपासक ही सच्चे उत्साही कहलाते हैं।

(2) गुलाबराय बाबू

प्रवष्त

अवैतनिक रूप से गुलाबराय केवल सेण्ट जॉन्स कॉलेज (आगरा) में कुछ वर्श तक अध्यापन करते रहे, वैसे उनका जीवन अध्यापन से अलग रहा है। इसके होते हुए भी उन्होंने जो समालोचनात्मक निबन्ध लिखे हैं, वे छात्रों के लिए अतिषय उपयोगी है। उन्हें पढ़ते समय ऐसा प्रतीत होता है, जैसे को अध्यापक बात को बार–बार समझाकर कह रहा है। और तब आगे बढ़ता है, जब उसे विष्वास हो जाता है, कि बात पूरी तरह समझ में आ गयी होगी, गुलाबरायजी की निबन्ध लेखन षैली के विशय में डॉ० रामगोपाल सिंह चौहान का वक्तव्य इस प्रकार है – गुलाबरायजी के निबन्धों में विशय एवं षैली की विविधता दिखाई देती है। 'प्रबन्ध प्रभाकर' विद्यार्थियों के लिए उपयोगी निबन्धों का संग्रह है। 'फिर निराष क्यों, में दर्षन, मनोविज्ञान और नीति आदि विशयों पर विचार–प्रधान निबन्ध संगृहीत हैं। 'मेरी असफलताएँ' में उनके व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित घटनाओं को आधार बनाकर लिखे गये व्यंग्य–विनोदपूर्ण निबन्ध संगृहीत हैं। इस संग्रह के

निबन्ध में तो वे अपने को ही केन्द्र बनाकर षिश्ट हास्य और व्यंग्य–विनोद का सृजन करते 'ठलुआ क्लब' में उनकी विनोदषील प्रकृति के दर्षन होते हैं। 'मेरे निबन्ध' और 'राश्ट्रीयता' में उनके फुटकर साहित्यिक, सामाजिक एवं राश्ट्रीयता सम्बन्धी विशयों पर र्ति तिवन्ध संगृहीत हैं। ''

गुलाबरायजी के निबन्ध 'रसराज हास्य' से कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं

'हँसने वाले के दरश्टिकोण के बताने वाले कई मत हैं। एक मत तो मनोविष्लेशणषास्त्रियों का है। उनका वचन है कि हास्य अबदमित वासनाओं का अपेक्षाकृत निरापद निकास–मार्ग है। और भी निकास के मार्ग हैं, यथा–स्वप्न, दैनिक भूलें आदि। जैसे किसी पटवारी की कलम गिर पड़ी और बेचारे किसान ने हृदय की दमित वासना को व्यक्त करते हुए कहा मुंषीजी ! आपकी छुरी गिर गई।'' लोग जमींदार को हँसी में जिमीदार, लार्ड चेम्सफोर्ड 'को 'चिलम फोड' या 'करम फोड' और 'जॉन मार्ले' को 'जान मार ले' कह देते थे। (3) पदुमलाल पुनालाल बख्शी

नालाल बषी –– बख्षीजी की गणना आलोचनात्मक निबन्धकारों में की जाती है। बख्षीजी अनेक वर्श तक 'सरस्वती' पत्रिका के सम्पादक रह चुके हैं। आपके कुछ निबन्ध वैयक्तिक भी हैं। इनका प्रकाषन 'कुछ' तथा 'और कुछ' नाम के संग्रहों के रूप में हुआ है। इन निबन्धों में आपने चरित्र–चित्रण की षैली अपनायी है। आपकी यह रोचक षैली साहित्य, धर्म, जीवन और समाज–सम्बन्धी निबन्धों में देखी जा सकती है। इन प्रष्नों पर आपने आत्मीयतापूर्वक विचार किया है। आपकी निबन्ध रचना षैली –अंग्रेजी निबन्धकार गार्डिनर और रवीन्द्रनाथ ठाकुर से प्रभावित है। बख्षीजी के निबन्ध का संग्रह 'पंचपात्र' है। इसमें 'अतीत की स्मृति', 'उत्सव', 'रामलाल पंडित', 'श्रद्धान्जलि के फूल' आदि निबन्ध संकलित हैं। इन निबन्धों में बख्षीजी की भावुकता, आत्मीयता रथ व्यायात्मकता का समन्वय देखा जा सकता है। बख्षीजी ने स्थान–स्थान पर हिन्दी निबन्ध एवं अन्य विधाऐं अन्तर्कथाओं का संकेत करके अपनी भाशा में तथा भाव में सजीवता का समावेष कर दिया है। इसके अतिरिक्त आपके निबन्धों में चित्रात्मकता भी पर्याप्त मात्रा है।

(4) जैनेन्द्र कुमार

इनकी प्रसिद्धि कहानी–लेखक के रूप में है। वैसे आपने अच्छे निबन्ध ों की भी रचना की है। आपने जिन निबन्धों की रचना की है, उनमें से अधिकांष दार्षनिक निबन्ध हैं। दार्षनिक निबन्धों की रचना आपने पाठक को सामने बैठा हुआ मानकर प्रष्नोत्तर रूप में की है। लगता है कि कोई आपसे प्रष्न कर रहा है और आप उनके उत्तर दे रहे हैं। यही कारण है कि आपके निबन्धों में दार्षनिक की ऊँचाई नहीं है, जिससे आप जनसामान्य से इतने ऊँचे प्रतीत हों, जहाँ तक पहुँचने की कल्पना सामान्य व्यक्ति न कर सके। आप पाठक के साथ आत्मीयता एवं खुलापन रखकर

उसके प्रष्नों का उत्तर देते हैं। पाठक की यह काल्पनिक उपस्थिति समस्या भी सामने रखती है और उसका समाधान भी करती है। आपके व्यंग्य और संकेत जो समस्या उपस्थित करते हैं, उसका धरातल नैतिक होता है। नैतिक धरातल पर उठी समस्या का समाधान भी नैतिक हो इसका आपने सदा ध्यान रखा है। आपके उच्च कोटि के निबन्धों के संकलन 'बाजार दर्षन' आप क्या करते 'कहानी नहीं' आदि हैं।

यदि जैनेन्द्र की भाशा पर व्याकरण की दश्टि से विचार करें तो इनकी भाशा कहीं–कहीं अपरिमार्जित प्रतीत होती है। भावों और विचारों में बहते हुए जैनेन्द्र ने भाशा के व्याकरणसम्मत रूप की ओर ध्यान नहीं दिया है। षब्द चयन में जैनेन्द्रजी ने पर्याप्त उदारता का व्यवहार किया है। अपनी बात कहने के लिए आपको जो षब्द उपयुक्त लगा, उसका प्रयोग आपने बिना य सोचे किया है कि यह षब्द किस भाशा का है। यही कारण है कि आपकी भाशा में अंग्रेजी, उर्दू और संस्कृत के तत्सम षब्द साथ–साथ उपस्थित हो जाते हैं। इसका कारण जैनेन्द्र की भाशा का चिन्तन की भाशा होना है। आपके निबन्ध 'भाग्य और पुरुशार्थ' से कुछ पंक्तियाँ इस दर्षश्ट से प्रस्तुत हैं कि इनकी भाशा–षैली को रेखांकित कर सकें भाग्य को भी इसी तरह मानता है। वह तो विधाता का ही दूसरा नाम है। वे सर्वान्तग्यामी और सार्वकालिक रूप में हैं, उनका अस्त ही कब है कि उदय हो। यानी भाग्य के उदय का प्रष्न सदा हमारी अपनी अपेक्षा से है। धरती का रुख सूरज की तरफ हो जाय, यही उसके लिए सूर्योदय है ऐसे ही मैं मानता हूँ कि हमारा मुख सही भाग्य की तरफ हो जाय, इसी को भाग्योदय मानना चाहिए।

(5) षान्तिप्रिय द्विवेदी – षुक्ल युग के निबन्धकारों में षान्तिप्रिय द्विवेदी नें निजी जीवन और व्यक्तिगत समस्याओं पर निबन्ध लिखने के अतिरिक्त 'कवि और काव्य', 'साहित्यिकी' प्रभृति आलोचनात्मक निबन्ध–संग्रहों में भी भावुकता और आत्मीयता का परिचय दिया है। भाशा की काव्यमयता, सुकुमार षब्द–योजना और भावोच्छ्वासों की तरल अभिव्यक्ति उनके निबन्धों की सहज विषेशताएं हैं। आपके विशय में डॉ0 बैजनाथ सिंह ने लिखा है– ''आप कवि, आलोचक तथा निबन्धकार– सभी रूपों में प्रसिद्ध हैं। छायावाद की काव्यध रा पर मौलिक तथा निष्चित विचार द्विवेदी जी द्वारा ही सर्वप्रथम सम्भव हो सका। इनकी आलोचनाओं को मुख्यतः दो श्रेणियों में विभाजित किया जाता हैं– भावात्मक तथा विचारात्मक। भावात्मक समीक्षाओं में इनके प्रारम्भिक निबन्ध आते हैं और विचारात्मक श्रेणी में आगे की रचनाएँ। इनकी विचारात्मक आलोचनाएँ भी षुद्ध साहित्यिक तथा समाजषास्त्रीय आदि उपश्रेणियों में बंटी हुई है। द्विवेदी जी में चिरन्तन सौन्दर्य की भावना का प्रबल्य है, जिसे छोड़ जैसे इनका रचनाकार जी भी नहीं सकता।

भाशा तथा षैली की दृश्टि से आपकी रचनाओं पर विचार करें तो ज्ञात होगा कि हिन्दी–साहित्य में आपने अपना एक अलग, स्थायी और निष्चित स्थान निर्मित करने में सफलता प्राप्त की है। आपकी भाशा प्रौढ़ तथा परिमार्जित है। आपकी भाशा की संस्कृति तत्सम षब्द–सम्पदा आपके भावों और विचारों से तदाकार हुयी जान पड़ती है। ऐसा प्रतीत होता है कि आपने प्रत्येक षब्द का प्रयोग पर्याप्त चिन्तन और मनन के पष्चात् किया है। आपकी षैली विचार–प्रधान है। कोई भी विशय हो, द्विवेदी जी के लिए उससे कोई अन्तर नहीं पड़ता आपने साहित्यिक, आलोचनात्मक ग्राम जीवन से सम्बन्धित सभी प्रकार के विशयों पर साधिकार लेखनी चलाई है। आपकी भाशा को विशय–विवेचन और कथ्य के स्पश्टीकरण में कहीं भी असुविधा नहीं हुयी है। आपकी विवेचना का तत्व सर्वत्र प्रधान रहा है। आपकी विवेचना और विचार की खिडकी से आपका कवित्व सर्वत्र और सदैव झाँकता रहा है!

आपकी षैली और भाशा की सत्यता, रेखांकित करने के लिए आपके निबन्ध ' श्रम धर्म की ओर' से कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जा रही हैं

'ग्रामाद्योगों द्वारा जब मनुश्य का श्रम सार्वजनिक कर्म योग बन जाएगा और सामाजिक आदान–प्रदान के कारण जीवन के साधनों के व्यक्तिगत संचय का लोभ नहीं रह जाएगा। मनुश्य स्वभावतः अपरिग्रही एवं अहिंसक हो जायेगा। उस स्थिति में अर्थषास्त्र का नूतन नामकरण करना पड़ेगा, श्रम में समिश्ट की उपलब्धि के कारण वह धर्म षास्त्र हो जायेगा और कर्म–कौषल के कारण कलाषास्त्र अभी तो अर्थषास्त्र के 'अर्थ' में स्वार्थ की गंध है हृदय की कृपणता है। ''

(6) षिवपूजन सहाय महत्वपूर्ण स्थान है। षिवपूजन सहाय 'भाशा के जादूगर' के रूप में विख्यात हैं। इनकी मस्ती और जिन्दादिली इनके व्यक्तिगत निबन्धों में फूटी सी पड़ती है। 'कुछ' षीर्शक निबन्ध–संग्रह में इन्होंने तुच्छ तुच्छ विशय को अपनी रोचक रचना प्रणाली से मोहक बना दिया है। उनके निबन्ध संख्या में अधिक नहीं है, पर जो हैं, वे उनकी आत्मभिव्यंजना, षिश्ट हास्य, भार्मिक व्यंग्य औपचारिक, किन्तु परिश्कृत परिमार्जित षैली के कारण हिन्दी– निबन्ध –साहित्य में अपना विषेश स्थान रखते हैं

षुक्ल युग के निबन्धकारों में आचार्य षिवपूजन सहाय का भी से डॉव हरिहर नाथ द्विवेदी ने आचार्य षिवपूजन सहायजी की भाशा–षैली को इन षब्दों में परिभाशित किया है।

रु आचार्य षिवपूजन सहाय गंगा की धारा की तरह खिलने वाले और गाँधी को वाणी बोलने वाले साहित्यकार थे। गंगा की धारा का संकेत उनकी षैली की निर्मलता तथा प्रवाहमयता की ओर है। गाँधी की वाणी से तात्पर्य स्वयं अपने और

दूसरों को मान प्रदान करने वाले उनके उदार और सात्विक स्वर हैं। जहाँ तक समग्र व्यंजित व्यक्तित्व का प्रष्न है। उनके निबन्धों में भी उनके सरलषील का परिचय मिलता है। राश्ट्र और समाज के लिए उपयोगी निबन्धों में उनकी आदर्ष–प्रियता, भावुकता और भक्ति–भावना देखने को मिलती है उनके ऐसे भी निबन्ध हैं जो विनोद–व्यंग्य और उमंग की दषा में लिखे गये हैं, जिनमें ''किसी मतवाद का आग्रह नहीं, मत परिवर्तन का उद्देष्य नहीं, जिनमें आनंद ही प्रधान है। इनके तिंधों के दो प्रधान आकर्शण हैं– साहित्यिक षैली का सचेत अध्यवसाय और र्तिश वर्ग के लोगों का उपहास षैली के अध्यवसाय में कई बातें देखने को मिलती हैं

मुहावरों और अनुप्रास की अजस्र छटा, देहाती दुनिया के षब्दों को पुटपाक–संस्करण तथा एक ही बात को अनेक प्रकार से कहने वाला भंगिमा–कौषल ।

इनके निबन्धों में 'मीठा–मीठा गप', 'मैं हज्जाम हूँ', 'एक अद्भुत कवि' की कुछ पंक्तियाँ भाशा और षैली की झलक पाने के लिए प्रस्तुत हैं

जब मेघ लघुषंका न करेंगे, तब देखिएगा दीर्घषंका का दीवाला। अन्त में उनके उखाड़े भी कुछ न उखड़ेगा। ''

(मीठा–मीठा गप)

'' मगर जी लगता नहीं, जब तक मेरे छुरे को छप्पन छुरा कोई छैल–छबीला नहीं मिलता। अगर संयोग से कोई गंडपताली मिल गया तो छुरा छूट–छूट कर चलता है । ' (मैं हज्जाम हूँ)

'बोले पंडित जी, षुक्र का अर्थ वीर्य है और गुजार का अर्थ देने वाला। मेरी राय तो यह है कि विकट नितम्ब के समान आप निकट नितम्ब नाम रख लीजिए।' (एक अद्भुत कवि)

(7) रामवृक्ष बेनीपुरी – बेनीपुरी जी इस प्रकार के साहित्यकार थे, जिनके लिए 'जिन्दादिल

विषेशण का प्रयोग करना सर्वथा उपयुक्त होगा। बेनीपुरीजी की जादुई लेखनी ने गद्य की सभी विधाओं को स्पर्ष किया है। आपका भाव समूह ओजस्वी एवं पाठक के मर्म को स्पर्ष करने वाला है। आपकी विचारधारा लोकमानस को प्रेरित करने वाली है। आपने जिन षब्दचित्रों की रचना की है, वे अनूठे हैं। बेनीपुरीजी को आलोचकों, चिन्तकों और विचारकों का एक विरले षैलीकार का आदर प्राप्त हुआ है। आपकी भाशा–षैली की सभी ने मुक्त कंठ से प्रषंसा की है। बेनीपुरीजी ने संस्मरणात्मक तथा भावात्मक निबन्धों की रचना की है। बेनीपुरीजी के सभी निबन्धों में उनके भावुक हृदय की छाया देखी जा सकती है। बेनीपुरीजी ने अपने निबन्धों की रचना स्वच्छन्द रूप से की है। उन्होंने अपने भावों पर कोई प्रतिबन्ध

ा नहीं लगाया है। बेनीपुरीजी की भाशा ओजगुण से समन्वित है। वैसे आपने षुद्ध खड़ीबोली का प्रयोग किया है, पर बीच–बीच में आंचलिक षब्द भी आ गये हैं। इन आंचलिक तथा प्रान्तीय षब्दों ने आपके भाव–प्रवाह में किसी प्रकार की बाध ाा उपस्थित नहीं की है। आपने अपने निबन्धों में चित्रोपम, डायरी तथा नाटकीय षैली का प्रयोग किया है। आपके वाक्य छोटे–छोटे हैं, जिनके कारण भाशा की प्रवाहषीलता में वद्धि हुई है। आपके भाव पाठकों को विभोर करने की पर्याप्त क्षमता रखते हैं। आपकी भाशा और षैली का साक्षात्कार कराने के लिए 'गेहूँ और गुलाब' निबन्ध से कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं–

रात का काला घुप्प पर्दा दूर हुआ, तब यह उच्छ्वसित हुआ, सिर्फ इसलिए नहीं कि अब पेट पूजा की समिधा जुटाने में उसे सहूलियत मिलेगी, बल्कि वह आनन्दविभोर हुआ। उशा की लालिमा से, उगते सूरज की षनैः–षनैः प्रस्फुटित होने वाली सुनहली किरणों से पृथ्वी पर चमचम करते लक्ष–लक्ष ओसकणों से। षुक्ल युग के अन्य निबन्धकारों के विशय में डॉ० नगेन्द्र द्वारा सम्पादित 'हिन्दी–साहित्य का इतिहास' में डॉ० ओमप्रकाष सिंहल ने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं '' इस काल के अन्य ललित निबन्धकारों में षान्तिप्रिय द्विवेदी, षिवपूजन सहाय, बेचन षर्मा उग्र, महाराज कुमार रघुवीर सिंह और माखनलाल चतुर्वेदी के भी नाम लिये जा सकते हैं। डॉ० रामगोपाल सिंह के अनुसार प्रसाद, निराला और महादेवी वर्मा ने निबन्ध –साहित्य की श्रीवृद्धि की। इसी युग में रायकृशणदास, वियोगी हरि और चतुरसेन षास्त्री ने छायावादी प्रतीकात्मक षैली से प्रभाव ग्रहण करके भावोच्छ्वासमय जिन गद्य–काव्यों की रचना की, वे वास्तव में ललित निबन्ध ही हैं। माखनलाल चतुर्वेदी ने भावात्मक निबन्धों की रचना की। इसी धारा में बाबू गुलाबराय, नन्ददुलारे वाजपेयी, डॉ० नगेन्द्र, षान्तिप्रिय द्विवेदी, हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी निबन्धों की अनूठी षैली की दृश्टि से अपना विषिश्ट स्थान रखते हैं। '' 4. चतुर्थ उत्थान काल (षुक्लोत्तर युग) सन् 1941 से अब तक का समय इस युग की समय–सीमा में आता है। कुछ विचारक इस 'अब तक' पर विरोध प्रकट करते. हुए कहते हैं कि ''यह 'अब तक' कब तक चलेगा।'' रामचन्द्र षुक्ल का 'हिन्दी साहित्य का 'इतिहास' प्रकाषित होने से लेकर यह 'अब तक' चल रहा है। इस प्रकार के विचारक हिन्दी निबन्ध के विकास में पंचम युग की भी कल्पना करते हैं और उसका नाम स्वातन्त्र्योत्तर युग रखते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि षुक्लोत्तर युग की समय–सीमा सन् 1947 तक ही रखनी पड़ेगी। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि भारत स्वतन्त्र होने के पष्चात् हिन्दी पाठकों और लेखकों– दोनों की संख्या में आष्चर्यजनक रूप से वृद्धि हुई है। सुविधा की

दृश्टि से सन् 1941 से लेकर अब तक के 60 वर्श के समय को षुक्लोत्तर युग ही माना जा रहा है। डॉ० नगेन्द्र तो षुक्लजी की अपेक्षा पर्याप्त पष्चाद्वर्ती एवं आध ा निक हैं। उनके संपादकत्व में प्रकाषित 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में आध ुनिक काल की समस्त विधाओं को चार भागों में ही विभाजित किया गया है। भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, छायावाद युग तथा छायावादोत्तर युग। इसमें छायावाद युग–षुक्ल युग और छायावादोत्तर युग– षुक्लोत्तर युग हैं।

षुक्लोत्तर युग समय–सीमा तथा साहित्य–रचना– दोनों दृश्टियों से विस्तृत एवं सम्पन्न इसके सभी निबन्धकारों पर विचार करना सीव नहीं है। यहाँ केवल कुछ निबन्धकारों की चर्चा की जा रही है।

(1) हजारीप्रसाद द्विवेदी – द्विवेदी जी बड़े चमत्कारी लेखक थे। उनकी लेखनी ने जिस विध 7 का स्पर्ष कर लिया, उसे लोहे से सोना बना दिया। उनके विशय में डॉ० नगेन्द्र द्वारा सम्पादित 'हिन्दी– साहित्य का इतिहास' में डॉ0 बाबू लाल गोस्वामी ने लिखा "द्विवेदी जी ने पाण्डित्य अर्जित किया है, किन्तु मनुश्यता भी उनमें कम नहीं हैं, फलस्वरूप पाण्डित्य को सहजता की ओर ले जाना उनका स्वभाव है। इतिहास, पुराण, साहित्य आदि से गम्भीर–से–गम्भीर तथ्य उठाते हुए वे प्रायः उन्हें समसामयिकता से जोड़ देते हैं। अतः उनके निबन्ध न तो गंभीरता का सेवर छोड़ते हैं और न सहजता का बाना। नकी रचना–प्रक्रिया में पाण्डित्य और सहजता का जो तनाव मिलता है, उसे पकड़ पाने के लिये पाठकों को भी सन्दर्भ की जानकारी होनी चाहिए, अन्यथा उनके निबन्धों के सौन्दर्य–बोध की समग्रतः को आयत्त नहीं किया जा सकता।

द्विवेदी जी की भाशा और षैली के प्रमाण के रूप में उनके ललित निबन्ध 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' से कुछ पंक्तियाँ उद्धृत हैं– सफलता और चरितार्थता में अन्तर है। मनुश्य नतमउपंज ं अमतत से, बाह्य उपकरणों के बाहुल्य से, उस वस्तु को भी पा सकता है, मारणास्त्रों के संचयन जिसे उसने बड़े आडम्बर के साथ सफलता का नाम दे रखा है, परन्तु मनुश्य की चरितार्थता प्रेम में है, मैत्री मे है, त्याग में है, अपने को सबके मंगल के लिए निःषेश भाव से देने में हैं। नाखूनों का बढ़ना मनुश्य की उस सहजता वृत्ति का परिणाम है जो उसके जीवन में सफलता ले आना चाहती है, उसको काट देना, उसका स्वनिर्धारित आत्मबन्ध न का फल है जो उसे चरितार्थता की ओर ले जाती है।

(2) विद्यानिवास मिश्र ललित निबन्धों के क्षेत्र में विद्यानिवास मिश्र ने अपनी अलग पहचान बनायी है। आपके निबन्धों में भारतीय संस्कृति और साहित्य के साथ–साथ लोक–जीवन को जोडने का भी सफल प्रयास है। आपके निबन्धों के विशय में डॉ0 "रामगोपाल सिंह का अभिमत ये षब्द प्रकट करते हैं–

गहन गंभीर पाण्डित्य के साथ–साथ लोक–जीवन की विविधापूर्ण झॉकी का प्रायः आपके सभी निबन्धों में बिम्ब––प्रतिबिम्ब भाव से मणिकांचन संयोग हुआ है। कभी वे देष में बिखरे लोकजीवन की बहुरंगी एवं हरी–भरी उपत्यका के उत्तुंग से आरम्भ कर पाठक को ऊँचे–नीचे षिखरों की सैर कराते हैं तो में बिखरे जीवन की झांकी दिखाते हैं। कभी वे पाठक को साहित्य, पुराणादि की ऊँचाईयों और गहराईयों में ले जाकर उनमें व्याप्त मानव के जीवन का परिचय देते हैं तो कभी उसे सामान्य लोक–भूमि पर उतार लाते हैं। मिश्रजी की निबन्ध–षैली डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी की षैली परम्परा में आती है, किन्तु आपकी षैली को द्विवेदी जी की षैली का अनुकरण नहीं कहा जा सकता, उससे प्रभावित भले ही माना जा सकता है। द्विवेदीजी की ललित निबन्ध–षैली में मिश्र जी के कथन ने अपने अनूठे ढंग और विविध षब्द योजना से एक नया पन ला दिया है। इसीलिए इनकी षैली इतनी विषिश्ट एवं मौलिक षैली बन गई है। '' डॉ0 विद्यानिवास मिश्र की भाशा और षैली को रेखांकित करने के लिए उनके ललित निबन्ध 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' से कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत की जा रही हैं– ''कैसे मंगलमय प्रभात की कल्पना थी और कैसी अंधेरी कालरात्रि आ गयी है? एक दूसरे को देखने से डर लगता है। घर मसान हो गया है, अपने ही लोग भूत–प्रेत बन गए हैं, पेड़ सूख गए हैं, लताएँ कुम्हला गयी हैं। नदियों और सरोवरों को देखना भी दुस्सह हो गया है । केवल इसलिये कि जिसका ऐष्वर्य से अभिशेक हो रहा था, वह निर्वासित हो गया है। उत्कर्श की ओर उन्मुख समश्टि का चौतन्य अपने ही घर से बाहर कर दिया गया, उत्कर्श की मनुश्य की ऊर्ध्वोन्मुख चेतना की यहीं कीमत सनातन काल से अदा की जाती रही है।''

' कभी ऊँचे षिखरों से आरम्भ कर उसे तलहटी

(3) डॉ० रामविलास षर्मा – षर्माजी के लेखन में उनका उदारवादी और दृढ़ व्यक्तित्व सर्वत्र झलकता है। आपके आकर्शक व्यक्तित्व में जिस प्रकार मस्ती में अक्खड़पन और अक्खड़पन में मस्ती है, उसी प्रकार आपकी षैली में भी यही स्थिति है। आपके निबन्ध व्यक्तिनिश्ठ और विशय–निश्ठ दोनो विषेशताओं से ओत–प्रोत हैं। व्यक्तिनिश्ठता और विशयनिश्ठता का यही विचित्र सामंजस्य आपकी भाशा में सर्वत्र देखा जा सकता है। आपकी भाशा में यदि संस्कृत का गुरु–गंभीर तत्सम षब्द समूह है तो उसके साथ–साथ सहज प्रवाहमयी व्यावहारिक खड़ी बोली भी सुषोभित होती है, जिसके निर्माण में उर्दू और अंग्रेजी के षब्द उदारता से सम्मिलित किये जाते हैं। कहावतो और मुहावरों ने आपकी भाशा को प्रवाहमयी एवं प्रभावमयी बनाया है। आन छोटी सी बात का विस्तार करनें और विस्तृत बात को संक्षिप्त करने में अत्यधिक समर्थ हैं। दुरूह और क्लिश्ट विशय

को सरल षब्दों में प्रस्तुत करने मे आपको विचित्र कुषलता प्राप्त है। रामविलास षर्माजी की भाशा एवं षैली के विशय में डॉ0 श्रीमोहन द्विवेदी ने अपनी मान्यता इन षब्दों में व्यक्त की है–

''डॉ0 षर्मा के विचारात्मक साहित्यक निबन्धों में विवेचनात्मक, तार्किक एवं व्यग्यपूर्ण षैली के दर्षन होते हैं। प्रष्नोत्तर उद्धरण और धारा षैली के उद्धरण भी विद्यमान सामाजिक, व्यावहारिक निबन्धों में व्यास, विवरणात्मक एवं व्यंग्यात्मक षैली का सामन्जस्य है। चिन्तन में क्रमबद्धता और भाशा में ओज तथा प्रसादत्व का अद्भुत समन्वय है। भाशा को प्रवाहपूर्ण, रोचक, प्रभावक एवं सारगर्भित बनाने के लिये षर्माजी ने उपयुक्त लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रयोग के साथ–साथ षब्द चयन करते समय व्यावहारिक षब्दावली के प्रयोग का विषेश ध्यान रखा है। उनकी भाशा में संस्कृत, अरबी, फारसी, उर्दू, अंग्रेजी के प्रचलित षब्दों के साथ आम बोलचाल के षब्द भी दृश्टव्य हैं। विचारानुकूल भाशा और षैली की प्रौढ़ता ने षर्माजी के निबन्धों को बोधगम्य कर दिया है। निःसन्देह उनके ओजस्वी एवं जनवादी दृश्टिपरक निबन्धों ने प्रगतिषील निबन्धकारों का मार्गदर्षन किया है।''

डॉ0 रामविलास षर्मा की भाशा षैली एवं विचारधारा से परिचित कराने हेतु उनके निबन्ध 'सौन्दर्य की उपयोगिता' से कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं–

''दुश्यन्त ने षकुन्तला को देखा। वह उसे सुन्दर लगी । षकुन्तला के साथ बडा अन्याय होगा, अगर हम कहें कि सौन्दर्य षकुन्तला में न था, वरन् दुश्यन्त में था और वह आपके प्रति अन्याय होगा, यदि कोई कहे कि आप दुश्यन्त की जगह होते तो उसे या काठ के कुन्दे और षकुन्तला को समदृश्टि से देखते। ''

असुन्दर कहते

(3) कुबेरनाथ राय– ये डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी की परम्परा के ललित निबन्ध ाकार है, पर आप द्विवेदीजी की षैली से सर्वथा मुक्त हैं। आपने अपने ललित निबन्धों के काव्य और षैली–षिल्प में नवीन भागमा का परिचय दिया है। आपके निबन्धों के माध्यम से सांस्कृतिक सम्बन्धों से आधुनिक जीवन के आयाम दृ श्टिगोचर होते हैं। आपके विशय में डॉ0 हरिहर निवास द्विवेदी ने लिखा है–

''कुबेरनाथ राय का सांस्कृतिक बोध आलोचक का और उल्लासनिश्ठ है। उनकी प्रतिभा मिथक निर्माण से लेकर इन्द्रजालीय तथा अच्छादन और अर्थ– गौरव से लेकर कसे हुए स्वच्छन्दषास्त्रीय षब्द–षिल्प तक समान रूप से सफल दीखती है। हों, यदा–कदा प्रदर्षन के लिये फ्रेजर, यीट्स, इलियट, पाउंड भी घसीट लिये जाते हैं। किसी भी बात को गौडीय सम्प्रदाय, मधुरा वृत्ति और अतिमा या योरोप के साहित्य, दर्षन, इतिहास, विज्ञान के पचड़े में फँसा देने से व्यक्तित्व का आतंक बढता है, उसकी अन्तरंगता या स्वाभाविकता नहीं। यों भी षैली कुछ ऐंठी हुई हैं।

इकाई – 4 डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. रामविलास शर्मा, हरिशंकर परसाई' विचार परम्परा से परिचित करानें हेतु उनकेललित निबन्ध 'संस्कृति का षेशनाग' से कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं–

''मन बडा ही मायावी नट है। मैं खेतों में आदिगन्त फैली हरीतिमा को देख रहा हूँ। और वह नटखट इस बीच में क्या–क्या नहीं देख लेता है। नौ रसों की पूरी लीला एक–एक करके उपस्थित हो जाती है उसके सामने। खेतों और पेड–पौध ाों की हरीतिमा बदल जाती है। एक विष्वव्यापी परिधान के बोध में और इस परिध ाान के भीतर एक बत्तीस लक्षणों वाली नारी का अदष्ष्य दिव्य तनु

दिवंगत निबन्धकारों में सर्वश्री रामधारीसिंह दिनकर, अज्ञेय, डॉ० नगेन्द्र, वासुदेव षरण अग्रवाल, बनारसी दास चतुर्वेदी, बेढब बनारसी, हरिषंकर परसाई एवं षरद जोषी का अवदान सदैव स्मरण किया जायेगा।

पिछले लगभग पच्चीस–तीस वर्शों में अनेक नये व्यंग्यकार ललित निबन्धकार एवं आलोचनात्मक निबन्ध–लेखक प्रकाष में आये है। ललित–निबन्ध लेखकों में विवेकी राय का नाम प्रसिद्ध है। हंत तिममकारों में प्रभाकर श्रोत्रिय, चन्द्रकान्त वादिवडेकर, नन्द किषोर आचार्य, निबन्धकारों बनवारी, प्रदीप मांडव, कर्ण सिंह चौहान, चंचल चौहान, विजयमोहन सिंह, ज्ञानरंजन आदि विषेश रूप से उभर रहे हैं। आजकल व्यंग्य निबन्ध लेखकों में के० पी० डंजमत निबन्ध–लेखकों सक्सेना सर्वोच्च षिखर पर हैं। डॉ० कृशणदत्त पालीवाल ने डॉ० नगेन्द्र द्वारा सम्पादित निबन्ध में रमेषचन्द्र षाह का नाम अत्यन्त आदर के साथ लेते हुए लिखा है – '' रमेषचन्द्र षाह के निबन्धों में इतिहास, परम्परा, संस्कृति की चिन्ता अज्ञेयजी की भाँति मथती रहती है। 'साहित्य में आज का गतिरोध', 'समकालीन रचना–मैं स्वतन्त्रता का अर्थ' आदि उनके ऐसे निबन्ध जो अपनी वैचारिक घनता और ऐतिहासिकता के बोध की स्पश्टता के लिए याद किये जायेंगे। ''

प्रमुख निबन्धकारों का परिचय

(1) पंडित बालकृश्ण भट्ट

पण्डित बालकृश्ण भट्ट का जन्म सन् 1844 ई० में प्रयाग में हुआ था। आपके पिता पं० बेणी प्रसाद भट्ट एक छोटे व्यवसायी थे। बालक की षिक्षा–दीक्षा घर पर ही हुई। अपनी बाल्यावस्था में इन्होंने संस्कृत व्याकरण, साहित्य, वेदान्त, ज्योतिशि आदि का अध्ययन किया। लगभग पन्द्रह वर्श की अवस्था में आपने जमुना– मिान स्कूल में प्रवेष लेकर अंग्रेजी भाशा का अध्ययन भी किया। इसी विद्यालय में किषोर बालकृश्ण को संस्कृत अध्यापक का पद प्राप्त हो गया जो ध ार्मिक मतभेदों के कारण उन्हें षीघ्र छोड़ना पड़ा। तत्पष्चात् उन्हें स्थानीय कायस्थ पाठषाला में

संस्कृत का अध्यापकत्व प्राप्त हुआ।

70 वर्श के जीवन में आपने अध्यापन, व्यवसाय, पत्रकारिता, समाज–सुधार आदि अनेक कार्य किये। भट्ट जी के जीवन में अभाव, दरिद्रता के साथ मनस्विता एवं निरन्तर संघर्श की प्रवत्ति सदा रही। दरिद्रता उनकी मनस्विता को कभी षिथिल नहीं कर पायी।

भट्ट जी भारतेन्दु–मण्डल के प्रमुख साहित्यकार थे। स्वयं भारतेन्दु जी भट्ट जी को विषेश श्रद्धा की दर्षश्ट से देखते थे और इन्हें अपने समकक्ष व साहित्य–समटा मानते थे।

भट्ट जी प्रमुख रूप से गद्य–लेखक ही थे, गद्य में भी यद्यपि इन्होंने नाटक एवं उपन्यास भी लिखे हैं, किन्तु ये विषेशकर निबन्ध लेखक ही माने जाते हैं। इनके निबन्ध 'साहित्य – सुमन एवं 'भट्ट निबन्धावली' में प्रकाषित हो चुके हैं।

भट्ट जी की षिक्षा–दीक्षा यद्यपि पुरातन वातावरण में हुई थी, परन्तु इन्होंने पुरातन रूढ़ियों एवं पाखंडों का निर्मम विरोध किया। इनकी परिश्कृत दर्षश्ट में समाज का उन्नत रूप स्पश्ट था। देष की हीन–दषा का इन्हें हार्दिक बोध था। अतएव इनमें देषभक्ति की तीव्र भावना विराजमान थी। विद्वान आलोचक भट्ट जी को आधुनिक हिन्दी आलोचना का जन्मदाता मानते हैं। इनकी आलोचना की कसौटी इनकी उपर्युक्त प्राज्जल दर्षश्ट ही थी– जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। इनके विचार उदार थे। डॉ० रामविलास षर्मा दर्षन, इतिहास, साहित्य आदि के प्रति भट्ट जी के विचारों को देखकर इन्हें अपने युग का महान विचारक मानते हैं। राजनीति मैं ये तिलक की नीति के अनुयायी थे और अपनी उग्र नीति के कारण ही ये सरकार के कोपभाजन बने। इन्हें 'हिन्दी– प्रदीप' पत्र बन्द करने के लिए विवष होना पड़ा।

भट्ट जी का युग विषेशतः गद्य का निर्माण काल था। उस समय के लेखक गद्य को समष्द्ध करने में संलग्न थे। ये गद्य षैली में भारतेन्दु जी को अपना नेता मानते थे, अतएव भाशा तथा षैली में ये प्रायः उन्हीं का अनुकरण करते थे। भारतेन्दु ने गद्य षैली की अव्यवस्था दूर करके उसको प्रतिश्ठित किया था। उनके समसामयिक लेखकों ने प्रायः उन्हीं की षैली का अनुकरण किया। विशय प्रतिपादन की दश्टि से भी भट्ट जी का निबन्ध साहित्य विविधता से परिपूर्ण है। इन्होंने छोटी चीजों और बातों से लेकर राजनीति, दर्षन, धर्म, देष–प्रेम एवं विषुद्ध–कल्पना पर निबन्ध लिखे। यह विशय वैविध्य एवं षैली वैविध्य ही भट्ट जी के महत्व का कारण है।

(2) आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का जन्म वैषाख षुक्ल चतुर्थी, संवत् 1921 (सन् 1864) को रायबरेली (उ.प्र.) जिले के दौलतपुर ग्राम में हुआ था। आपके पिता रामसहाय दुबे साधारण किसान परिवार से थे, सो अंग्रेजी पल्टन में सिपाही थे। सन् 1857 के आन्दोलन में जब पल्टन बागी हो गयी तब वे किसी तरह भाग निकले और नदी में कूदकर जान बचायी। साधु–वेष धारण किया और माँगते खाते किसी तरह घर पहुँचे। अनन्तर बम्बई चले गये जहाँ एक सेठ के घर पूजा–पाठ करने लगे। रामसहाय के पिता भी अंग्रेजी फौज के हिन्दुस्तानी सिपाहियों को 'कथा' सुनाया करते थे। द्विवेदी जी की षिक्षा–दीक्षा बड़ी कठिनाइयों में हुयी। आपकी विद्यालयीय षिक्षा बहुत अल्प थी तथा तल्लीन स्वाध्याय से आपने अत्यधिक ज्ञानार्जन किया आपका पूरा परिवार विद्याव्यसनी था। आपका मामा नाना संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। संस्कृत का ज्ञान आपने मातामह पितामह से प्राप्त किया। बाल्यावस्था से ही आपको 'रामचरित मानस' से विषेश अनुराग था आपकी औपचारिक षिक्षा अधूरी रही। इसके बाद आप पिता के साथ बम्बई चले गये। वहीं रेलवे विभाग में छोटी सी नौकरी कर ली निश्ठा तत्परता के आध र पर नौकरी में सिग्नलर से इंस्पेक्टर, फिर हेड टेलीग्राम इंस्पेक्टर, अनन्तर झाँसी में डिस्ट्रिक्ट सुपरिन्टेन्डेन्ट के चीफ क्लर्क बना दिये गये उन दिनों वेतन 200 रुपये प्रतिमाह था किन्तु अंग्रेजी अफसर के अवमानना पूर्ण व्यवहार से क्षुब्ध होकर आपने त्यागपत्र दे दिया। आप परम स्वाभिमानी, कर्तव्यनिश्ठ, षुद्धाचरणवान, नीतिपरायण तथा स्वभाव से किंचित रूक्ष एवं अनम्य थे। वे कभी कहीं किसी से नहीं झुके, न ही कभी समझौता किया।

सन् 1903 में सरकारी नौकरी छोड़कर द्विवेदी जी 20 रुपया मासिक पर 'सरस्वती' 'पत्रिका के सम्पादक बन गये फिर जीवन पर्यन्त हिन्दी सेवा में लीन रहे। आपने हिन्दी भाशा को अपूर्व षक्ति सामर्थ्य से सम्पन्न बनाया। आपने सन् 1920 में 'सरस्वती' के सम्पादन कार्य से अवकाष ग्रहण कर लिया। अतिषय अध्ययन लेखन के कारण आपको उन्निद्र रोग हो गया। जीवन के अन्तिम 18 वर्श बड़े कश्ट में बीते। जब आप 40–42 वर्श के थे तभी पत्नी की मृत्यु हो गयी थी, जिनसे आपको बड़ा अनुराग था, द्विवेदी जी निःसंतान थे, 21 दिसम्बर, 1938 को रायबरेली में द्विवेदी जी का स्वर्गवास हो गया, द्विवेदी जी के मौलिक तथा अनूदित छोटे–बड़े पद्य–गद्य–ग्रन्थों कुल संख्या 80 से अधिक है। कविता लेखन की ओर आपकी विषेश रुचि नहीं थी आपका अपना प्रकृति क्षेत्र गद्य ही था। आपके प्रमुख ग्रन्थों में रसज्ञ– रंजन, साहित्य सीकर, साहित्य सन्दर्भ, सुकवि संकीर्तन, अद्भुत आलाप, आलोचनान्जलि, समालोचना, समुच्चय, वाग्विलास, संकलन, विचार– विर्मा आदि उल्लेखनीय हैं। आलोचना के क्षेत्र में आपको विषेश

प्रसिद्धि मिली। द्विवेदी जी ने हिन्दी गद्य का परिस्कार–संस्कार किया। कठिन–से–कठिन विशयों को सरल रूप में अच्छी प्रकार समझकर लिखना आपकी षैली की विषेशता है। आपके द्वारा रचित निबन्ध ंतम ंज की संचित राषि है। आप बीसवी सदी के प्रथम दो दषकों के हिन्दी जगत के सर्वाधिक प्रभावषाली व्यक्तित्व रहे हैं।

(0) रामचन्द्र षुक्ल

रामचन्द्र षुक्ल का जन्म बस्ती जिले अगौता नामक ग्राम में एक सरयूपारीय ब्राह्मण परिवार में हुआ। इनकी षिक्षा एफ० ए० तक हुई थी, किन्तु स्वाध्याय से संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी साहित्य का इन्होंने अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। कुछ समय तक आप मिर्जापुर के नि स्कूल के ड्राइंग मास्टर के रूप में अध्यापन कार्य करते रहे। सन् 1908 में आप 'काषी नागरी प्रचारिणी सभा' में 'हिन्दी षब्दसागर' के संपादक के रूप में नियुक्त हुए। इसके पष्चात् सन् 1921 में आप काषी हिन्दू विष्वविद्यालय में हिन्दी के प्राध्यापक नियुक्त हुए। सन् 1937 में आपने उक्त विभाग के अध्यक्ष पद को सुषोभित किया।

षुक्ल जी सर्वतोमुखी प्रतिभा के साहित्यकार थे। यह कवि, निबन्धकार और आलोचक थे। इन्होंने आलोचना और निबन्ध के क्षेत्र मे स्थायी कीर्ति स्थापित करने वाले कार्य सम्पादित किये। षुक्ल जी ने साहित्य लोचन और मनोविकार सम्बन्धी निबन्ध लिखे हैं। अपने आलोचनात्मक निबन्धों में इन्होंने साहित्य के अंतर्गत लोक मंगल की भावना पर बल दिया है। जीवन में और काव्य में क्रियाषीलता को ये विषेश महत्व देते हैं। इनकी दृश्टि में महत् काव्य वही है, जिसमें जीवन की क्रियाषीलता उजागर हुयी हो। इनके विचार से काव्य का लक्ष्य हमारे मनोभावों का परिश्कार और षेश सृश्टि के व्यक्ति का सम्बन्ध स्थापित करना है। अपने मनोविकार सम्बन्धी निबन्धों में इन्होंने मनोविकारों का मनोवैज्ञानिक स्वरूप स्पश्ट किया है। और सामाजिक दृश्टि से उसके षुभ तथा अषुभ परिणामों पर प्रकाष डाला है। इनके मत से मनोविकारों को मार डालने का उपदेष अव्यवहारिक है। हमें उनके परिश्कार और उन्नयन का प्रयत्न करना चाहिये। इस प्रयत्न में काव्य या साहित्य हमारा सहायक होगा।

षुक्ल जी की गम्भीर प्रकृति इनके निबन्धों और आलोचनाओं में भी प्रतिफलित हुयी। जिस तरह इनके गम्भीर व्यक्तित्व में व्यंग्य और विनोद का हल्का पुट दिखाई देता था, उसी तरह इनके निबन्धों में भी यथा स्थान चुटीले व्यंग्य और परस विनोद के छींटे दृश्टिगोचर होते हैं। षुक्ल जी ने हिन्दी की षास्त्रीय गद्य–षैली को नया रूप दिया। किसी बात को तर्कसंगत और स्पश्ट ढंग से कहने की कला में ये पूर्ण पारंगत थे। इनकी विष्लेशण क्षमता आसाधारण थी। उपयुक्त उदाहरणों और दृश्टांतों द्वारा ये अपने मतव्य को परिपुश्ट करते चलते थे।

यथावसर इनके गद्य का भावमय रूप भी प्रकट हुआ है। इन्होंने अधिकतर संस्कृत के तत्सम षब्दों का प्रयोग किया है किन्तु आवष्यकता पड़ने पर उर्दू षब्दों और मुहावरों का भी बेधड़क व्यवहार किया है। अर्थगर्भित सूक्तियाँ रचने में षुक्ल जी पूर्ण दक्ष थे।

(4) गुलाबराय

गुलाबराय जी का जन्म माघ षुक्ल 4, सं० 1944 वि० (सन् 1887 ई०) को इटावा (उ०प्र०) में तथा देहान्त 13 अप्रैल, 1963 ई० को आगरा में हुआ। इन्हें अपनी माता जी से तथा कबीर, सूर, तुलसी आदि के साहित्य से धार्मिक एवं साहित्यिक संस्कार मिले। पिता का सरकारी नौकरी में होना उनकी षिक्षा में सहायक सिद्ध हुआ। इन्होंने आठवें दर्जे तक फारसी और संस्कृत का अध्ययन किया। बी० ए० में संस्कृत, काव्यषास्त्र तथा दर्षनषास्त्र विषिश्ट विशय रहे। आपने 1913 ई० में दर्षनषास्त्र में एम० ए० पास करने के बाद महाराजा छतरपुर के यहाँ निजी सचिव तथा दीवान के रूप में काम किया। महाराजा का देहावास होने पर नौकरी छोड़कर सेंट जान्स कॉलेज, आगरा में हिन्दी–प्राध्यापक हो गये। आपकी साहित्यिक सेवाओं से प्रभावित होकर आगरा विष्वविद्यालय ने आपको डि० लि० की उपाधि से सम्मानित किया। साहित्य के प्रति आपका विषेश झुकाव छतरपुर में होना आरंभ हुआ। आपने अपने स्वतंत्र लेखन में निबन्ध, व्यंग्य, साहित्यलोचन, काव्य, संस्मरण, यात्रा, डायरी तथा रेखाचित्र आदि को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। आप द्विवेदी युग के प्रमुख आलोचक तथा निबन्धकार थे। आपका कृतित्व इन कोटियों में रखा जा सकता

(1) काव्यषास्त्र

(2) आलोचना इतिहास द्य

(3) दर्षन इतिहास द्य

नवरस, सिद्धांत और अध्ययन, काव्य के रूप तथा हिन्दी नाट्यविर्मा।

अध्ययन और आस्वाद, हिन्दी काव्य विमष तथा हिन्दी काव्य का सुबोध

मन की बातें, तर्कषास्त्र, कर्तव्यषास्त्र, बौद्ध धर्म तथा पाष्चात्य दर्षनों का

(4) निबन्ध दृ ठलुआ क्लब, फिर निराष क्यों, मेरी सफलताएँ, मेरे निबन्ध, जीवन और जगत, कुछ उथले कुछ पुथले, कुछ गहरे मनोवैज्ञानिक निबन्ध, राश्ट्रीयता, जीवन रष्मियाँ तथा

प्रबन्ध प्रभाकर।

(5) सम्पादित ग्रन्य – प्रसाद जी की कला तथा आलोचक रामचन्द्र षुक्ला

गुलाबराय ने लंबे अरसे तक 'साहित्य संदेष' का सम्पादन भी किया। एक निबंधकार के रूप में आपका हिंदी साहित्य को विषिश्ट योगदान रहा है। इन निबन्ध

ों का प्रतिपाद्य सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक अधिक है। इनके निबन्धों में राश्ट्रीयता, भावुक हृदय की आत्माभिव्यक्ति तथा हास्यविनोद की सरस झलक रहती है। आप अपने निबन्धों में निजी जीवन की त्रुटियों पर मीटी हंसी हंसते हुए पाठक की सहानुभूति प्राप्त करते हैं। इनके व्यंग्य में कसक रहती है कटुता नहीं। अधिकांष निबन्धों में व्यक्तिगत जीवनाभूतियां कहानी जैसी रोचकता से मंडित हैं। लालित्य इनके निबन्धों की विषिश्टता है। इनके निबन्ध विचारात्मक, भावात्मक, हास्य–व्यंग्यपरक, व्यक्तिव्यंजक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक आदि कोटियों में रखे जा सकते हैं। षैली सरस तथा व्याख्या– प्रधान, अनुभूति सच्ची और विचार स्पश्ट हैं। छोटे–छोटे वाक्य, मुहावरे और लोकोक्तियों के प्रयोग से आपकी भाशा सषक्त बन पड़ी है। अपने विचार की पुश्टि के लिए संस्कृत गद्य, पद्य के उद्धरण उद्धत करना उनकी षैली का अंग हैं।

आचार्य रामचन्द्र षुक्ल के षब्दों में भाशा की एक नयी गतिविधि तथा आधुनिक जगत् की विचारधारा से उद्दीप्त नूतन भावभंगी उनक निबन्धों की विषेशता है। आप जब साहित्यिक तथा गंभीर विशयों के प्रतिपादन में संयमित रूप से तत्सम षब्दों का सहज प्रयोग करते हैं, तो सामान्य विशयों में भाशा व्यावहारिक जाना धारण कर लेती है। मुहावरे लोकोक्तियाँ तथा देषज षब्दावली आपकी गद्य षैली की विषिश्टता है। इसी विषिश्टता के कारण क्लिश्ट से क्लिश्ट विशय भी आपकी कलम की नोक पर आकर सरल, सुबोध तथा सरस बन जाता है। गुलाबराय जी ने अपने निबन्धों के बारे में लिखा 'मेरे निबन्धों में जीवन और जगत से प्राप्त अनुभूतियाँ हैं और उन पर मेरी षैली और उसमें व्यक्त होने वाले व्यक्तित्व की छाप है। मैं अपने निबन्धों में अपेक्षाकृत वैज्ञानिक और विशयगत होते हुए भी उनकी साहित्यिकता को अक्षुण्ण रख सकता हूँ, यही मेरे लेखन की विषेशता है।'

(5) डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी

हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का जन्म बलिया जिले के अन्तर्गत एक गाँव में हुआ। काषी हिन्दी विष्वविद्यालय से संस्कृत–साहित्य और ज्योतिश की उच्च षिक्षा प्राप्त करके आप षान्तिनिकेतन में हिन्दी के अध्यापक होकर चले गये वहाँ आप लगभग 20 वर्शों तक अध्यापन कार्य करते रहे। सन् 1949 में लखनऊ विष्वविद्यालय ने इन्हें डी० लिट् की सम्मानोपाधि प्रदान की। सन् 1957 में इन्हें 'पद्म भूशण' की उपाधि मिली। सन् 1958 में आप राश्ट्रीय ग्रन्थ न्यास के सदस्य बने । सन् 1960 में आप पंजाब विष्वविद्यालय, चंडीगढ़ में हिन्दी विभागाध्यक्ष के रूप में चले गये। सन् 1968 में पुनः काषी हिन्दू विष्वविद्यालय लौटे और वहाँ कुछ दिनों तक रेक्टर (त्मबजवत) के पद पर रहे। सन् 1972 में उ० प्र० ग्रन्थ अकादमी के उपाध्यक्ष नियुक्त हुए।

षान्ति निकेतन में रवीन्द्रनाथ ठाकुर के सम्पर्क में आने पर द्विवेदी जी के दृ श्टिकोण में एक नवीन चेतना और व्याप्ति आयी। वहाँ रहकर इन्होंने संस्कृत, बांग्ला और अंग्रेजी साहित्य का गंभीर अध्ययन किया। इसी के फलस्वरूप इनके दिन को एक व्यापक पृश्ठभूमि मिली।

चिंतन

द्विवेदी जी हिन्दी के प्रमुख निबन्धकार, उपन्यास लेखक, आलोचक और षोधकर्ता हैं। व्यक्तिनिश्ठ निबन्ध लेखकों में इनका अप्रतिम स्थान है। इनका उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' अपने ढंग अखंड परम्परा और समसामयिक सामाजिक परिवेष का सामंजस्य मूलक दृश्टिकोण लेकर अवतरित हुए। द्विवेदी जी में प्रतिभा और पांडित्य का मणिकांचन संयोग था ।

का अकेला है। आलोचना के क्षेत्र में भी साहित्य की णभट्ट की

द्विवेदी जी ने विशय निश्ठ और आत्मनिश्ठ दोनों प्रकार के निबन्ध लिखे हैं। संस्कृ ति, ध र्म, षिक्षा, साहित्य, ज्योतिश जैसे विभिन्न विशयों पर लिखे गये इनके विशयनिश्ठ निबन्धों में व्यापक पंडित्य, गहन चिंतन और प्रेरणाप्रद उदार मानवतावादी दर्षश्टकोण का प्रकाष है। इनके व्यक्तिनिश्ठ ललित निबन्धों में इनकी सष्जनात्मक प्रतिभा का अत्यन्त रुचिर रूप प्रकट हुआ है। संस्कृत साहित्य की दृढ़ पष्ठभूमि इनकी सहज भावुकता के साथ मिलकर षैली को अत्यंत आकर्शक और मार्मिक बना देती है। इनकी भाशा में तत्सम तद्भव और उर्दू के षब्दों का इतना संगत प्रयोग हुआ है कि उसमें सहज प्रभावमयता आ गयी है। भावमय वातावरण का निर्माण इनकी षैली का एक विषिश्ट गुण है। अषोक के फूल, कल्पलता, विचार और विर्तक, कुजट, आलोक पर्व आदि इनके प्रसिद्ध निबन्ध संग्रह है।

(6) डा० रामविलास षर्मा

मार्क्सवादी समीक्षा पद्धति के प्रमुख स्तम्भ, प्रगतिषील लेखक, भाशाविद्, इतिहास–दाटा डा० रामविलास षर्मा का जन्म सन् 1912 ई० उन्नाव के बैसवाड़ा क्षेत्र में हुआ । इनकी षिक्षा दीक्षा लखनऊ में हुयी। राजा बलवंत सिंह कॉलेज, आगरा में वे अंग्रेजी के विभागाध्यक्ष रहे और बाद में आगरा विष्वविद्यालय के कन्हैयालाल मणिकलाल मुंषी विद्यापीठ के निदेषक के पद पर आसीन हुए। हिन्दी साहित्य–साध ाना में वे अपने युवाकाल से जीवन के अन्त तक रत रहें। वे अंग्रेजी के प्राध्यापक होने के नाते अंग्रेजी के विद्वान तो थे ही, हिन्दी के क्षेत्र में भी एक ख्याति प्राप्त समीक्षक तथा लेखक के रूप में स्थापित थे। उन्होंने अपनी रचनाओं से हिन्दी की बड़ी महत्वपूर्ण सेवा की है।

राश्ट्रभाशा डा० षर्मा ने मार्क्सवाद के केवल सैद्धान्तिक रूप को ही प्रतिपादित नहीं किया अपितु उन्होंने सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य को मार्क्सवादी दृश्टिकोण से

देखा–परखा। भारतीय इतिहास और परिवेष को उन्होंने सदैव ध्यान में रखा तथा लोक जीवनोपयोगी संदेषात्मक एवं निर्माणात्मकता को विषेश महत्ता दी। अपने हिन्दी प्रेम के लिए वे विख्यात रहे हैं। हिन्दी भाशा को वे के रूप में प्रतिश्ठित होते हुए देखने के तर्क पूर्ण अभिलाशी थे। इसके लिए वे निर्भीकता से कहते–लिखते भी थे। भारतेन्दु युग, प्रेमचन्द्र और उनका युग, निराला की साहित्य–साधना, भाशा और संस्कृति, भाशा और समाज, भारत की भाशा समस्या, लोक जीवन और साहित्य, प्रगति और परम्परा, प्रगतिषील लेखन की समस्याएं आदि उनकी उल्लेखनीय कृतियां हैं। डा० षर्मा ने कुछ कविताएं भी लिखी हैं। 'तार सप्तक' में स्थान प्राप्त उनकी कविताएं चर्चित रही हैं। षर्मा जी के कुछ निबन्धों में स्थान पाने वाली अक्खड़ता और कटुतम आलोचना लोगों को कुछ खटकती है, किन्तु वह उनके दृढ़ स्वभाव, पुश्ट विचार और स्पश्टवादिता का परिणाम है। षर्मा जी की भाशा षिक्षितों की सहज भाशा रही है। उसमें संस्कृत की तत्सम षब्दावली और समास––प्रधान वाक्य रचना के साथ–साथ भाशा का हल्का फुल्कापन और प्रवाहमयता विद्यमान है। आपने बोलचाल के उर्दू तथा अंग्रेजी षब्दों का खुलकर प्रयोग किया है। मुहावरों, कहावतों और उदाहरणों का भी यथासम्भव प्रयोग है। आपकी भाशा में इन सब बातों से भाशा बड़ी सजीव बन गयी है। वे आम जनता की प्रवाहमय भाशा को अपनाने के पक्षधर हैं।

षर्मा जी ने अपने निबन्धों में विवेचनात्मक, समीक्षात्मक और व्यंग्यात्मक षैलियों को अपनाया। वे दो टूक बात कहने के अभ्यस्त थे। षर्मा जी अपने विवेचन में स्पश्टवादी तथा लक्ष्यवादी हैं। उनकी विवेचना वैज्ञानिक है। समीक्षात्मक षैली में वे एकराह चलकर षीघ्रता और सरलता. से निर्णय पर पहुंच जाते हैं। उनकी अधि ाकांष समीक्षा निर्णयात्मक हैं। व्यंग्यात्मक षैली को उन्होंने गंभीर, तात्विक एवं सैद्धान्तिक विवेचन के बीच–बीच में अपनाया है। इसके अन्तर्गत बड़े तीखे व्यंग्यों का प्रयोग किया गया है। यह व्यंग्य कभी–कभी इतने प्रहारक बन जाते हैं कि तिलमिलाहट पैदा कर देते हैं।

(7) हरिषंकर परसाई

हिन्दी के सषक्त व्यंग्यकारों में हरिषंकर परसाई की गणना की जाती है। आपका जन्म 22 अगस्त, 1924 ई. को मध्य प्रदेष के होषंगाबाद के जमानी नामक स्थान पर हुआ। परसाई जी. ने नागपुर विष्वविद्यालय से हिन्दी विशय में एम.ए. की उपाधि प्राप्त की। अठारह वर्श की अवस्था में आपनें जंगल विभाग में नौकरी आरम्भ की। जंगल विभाग की नौकरी के याद छ माह तक खण्डवा में अध्यापक रहे। सन् 1941 से 1943 ई. तक जबलपुर में स्पेस ट्रेनिंग कॉलेज में आपने षिक्षण कार्य का अध्ययन किया सन् 1943 ई० में जबलपुर के मॉडल हाई स्कूल में आप

अध्यापक हुए। सन् 1952 ई० में आपने सरकारी नौकरी छोड़कर आपने स्वतंत्र लेखन को आजीविका के लिए चुना। आपने जबलपुर से 'वसुधा' नाम की साहित्यिक मासिक पत्रिका निकाली, घाटा होने पर बंद कर दिया। अनेक वर्शों तक आप पत्र–पत्रिकाओं में स्तंभ लेखक का कार्य करते रहे। स्तंभ लेखक के रूप में आपको विषेश ख्याति मिली। 'नई दुनिया' में 'सुनो भई साधो', नई कहानियों में 'पांचवां कालम' और 'उलझी–उलझी' तथा 'कल्पना में' और अंत में लिखी गयी व्यंग्य रचनाएँ विषेश चर्चित रहीं। आपका निधन सन् 1995 ई० में हुआ।परसाई जी ने कहानी, उपन्यास तथा निबन्ध लिखे, परन्तु इनकी विषेश पहचानएक व्य ाय निबन्धकार के रूप में ही रही। अब तक प्रकाषित प्रमुख पुस्तकें हैंउपन्य ास– रानी नागफनी की कहानी, तट की खोज कहानी संग्रह हँसते हैं रोतेहैं, जैसे उनके दिन फिरेय व्यंग्य निबन्ध–संग्रह–– तब की बात और थी, भूत के पाँव पीछे, बेईमानी की परत, वैशणव की फिसलन, पगडंडियों का जमाना, षिकायत मुझे है, सदाचार का ताबीज, विकलांग श्रद्धा का दौर, तुलसीदास चंदन घिसै, हम एक उम्र के वाकिफ है, जाने–पहचाने लोग। परसाई जी को 'विकलांग श्रद्धा का दौर' पर साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला।

माड्यूल – 2 गद्य की अन्य विधाएँ और संकलित रचनाकार

इकाई – 5 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी (सन् 1907–1979), बाबू गुलाबराय (सन् 1888–1963 ई.)

व्यंग्य लेखन के केन्द्र में होती यथार्थ की भूमि पर मूल्य के क्षत होने की बेचौनी, विसंगतियों से उपजी छटपटाहट और बेरीद होती व्यवस्था। परसाई जी की व्यंग्य रचनाएँ इसी के परिणाम हैं। इनके व्यंग्य 'आँखिन देखी' अन्तर्भूत सत्य को उद्घाटित करते हैं। उनके व्यंग्य विसंगतियों पर प्रकाष ही नहीं डालते, अपितु परिषोधन की पहल भी करते हैं, क्योंकि इनकी सम्मुखता मूल्यों के प्रति है। इसीलिए इन्होंने किसी दोश को न अनदेषा किया और न उसे ढकने की कोषिष की, बल्कि ऊपरी आदर्षवादिता की कलई खोलने में लेखन षैली की कलात्मकता एवं निर्भीकता से सबको परिचित कराकर अपनी पटुता सिद्ध की।

परसाई जी के व्यंग्य के विशय का क्षेत्र व्यापक है। यद्यपि इन्होंने राजनीतिक व्यंग्य अधिक लिखे हैं, फिर भी सामाजिक, धार्मिक आदि अन्यान्य क्षेत्रों पर लिखे गये व्यग्य भी कम नहीं हैं। राजनीति पर अधिक प्रहार करना स्वाभाविक है क्योंकि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में राजनीति की पहुंच अधिक हो गयी है। हर बात में आजकल राजनीति है। राजनीति की सर्वव्यापकता से कुछ भी अछूता नहीं है। समाज के प्रत्येक वर एवं प्रवत्ति पर इनकी पैनी दर्षश्ट पड़ी है। इनके व्यंग्यात्मक निबन्ध आज के भारतीय जीवन के जीते–जागते दस्तावेज बन गये हैं।परसाई जी की लेखन षैली की ऋजुता में ही वक्रता अन्तर्निहित है।

बनती है। इसीलिए इनके व्यंग्य षिश्ट हैं, क्लिश्ट नहीं। इनकी षैली में कथात्मकता, भावात्मकता, संवादात्मकता जहाँ निबन्ध में सरसता और रोचकता की सृश्टि करते हैं, वहीं विष्लेशणात्मकता एवं आलोचनात्मकता मूल्यगत क्षरण का आइना पाठक के सम्मुख प्रस्तुत करते है, जो पाठक को मन मसोसने के लिए विवष करते हैं। यही कारण है कि इनकी निबन्ध षैली गद्य की कई विधाओं को अतिक्रमित करती है। व्यंग्य उभारने में उपमानों का विषेश हाथ होता है। परसाई जी सटी उपमानों का प्रयोग करते हैं। उपमित करने में वे उपमान–वाचकों का बहुत कम प्रयोग करते परसाई जी के निबन्धों में प्रयुक्त षब्दों के तौर–तरीके, निबन्ध की प्रभावोत्पादकता और मारक क्षमता को द्विगुणित करते हैं। किसी विषेश प्रकार के षब्द चयन के लिए इनकी प्रतिबद्धता नहीं है, बल्कि व्यावहारिकता तथा सहजता को ही आधार बनाया। वे षब्द को सहज और सटीक की कसौटी पर ही रखकर प्रयुक्त करते हैं। मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ का वे सुन्दर नियोजन करते हैं। प्रचलित अंग्रेजी, अरबी, फारसी के षब्द उनके निबन्धों में मिलते हैं। निश्कशर्तः उनके निबन्ध व्यंग्यात्मक सरसता के कारण लोकप्रिय एवं चर्चित ही नहीं हुए, बल्कि एक स्वतंत्र विधा के रूप में प्रतिश्ठित भी हैं।

प्रमुख निबन्धकारों के प्रसिद्ध निबन्ध इस प्रकार हैं

बातचीत ख पं० बालकृश्ण भट्ट , का मौका इसे तो सभी स्वीकार करेंगे कि अनेक प्रकार की षक्तियाँ जो वरदान की भाँति ईष्वर ने मनुश्यों को दी हैं, उनमें वाक्षक्ति भी एक है। यदि मनुश्य की और और इन्द्रियाँ अपनी–अपनी षक्तियों से अविकल रहतीं और वाक्षक्ति उनमें न होती तो हम नहीं जानते इस गूँगी सृश्टि का क्या हाल होता। सब लोग लुंज–पुंज से हो मानो एक कोने में बैठा दिये गये होते और जो कुछ सुख–दुख का अनुभव हम अपनी दूसरी–दूसरी इन्द्रियों के द्वारा करते, उसे अवाक् होने के कारण आपस में एक–दूसरे से कुछ न कह सुन सकते। अब इस वाक्षक्ति के अनेक फायदों में ''स्पीच'' वक्तृता और बातचीत दोनों हैं, किन्तु स्पीच से – बातचीत का कुछ ढंग ही निराला है। बातचीत में वक्ता को नाज–नखरा जाहिर करने नहीं दिया जाता है कि वह एक बड़े अन्दाज से मिन–गिनकर पॉव रखता हुआ पुलपिट पर जा खड़ा हो और पुण्याहवाचन या नान्दीपाठ की भांति घड़ियों तक साहबान मजलिस, चेयरमैन, लेडीज ऐंड जेंटिलमेन की बहुत–सी स्तुति करायी तब किसी तरह वक्तृता का आरम्भ किया गया। जहाँ कोई मर्म या नोक की कोई चुटीली बात वक्ता महाषय के मुख से निकली कि करतल ध्वनि से कमरा गूंज उठा। इसलिये वक्ता को खामखाह ढूंढ़कर कोई ऐसा मौका अपनी वक्तृता में लाना ही पड़ता है जिसमें करतल ध्वनि अवष्य हो। वहीं हमारी साधारण बातचीत का कुछ घरेलू ढंग है कि उसमें न करतल ध्वनि का

कोई मौका है, न लोगों को कहकहे उड़ानें की कोई बात उसमें रहती है। हम तुम दो आदमी प्रेमपूर्वक संलाप कर रहे हैं। कोई चुटीली बात आ गई, हँस पड़े तो मुसकराहट से होठों का केवल फरक उठना ही इस हँसी की अन्तिम सीमा है। स्पीच का उद्देष्य अपने सुनने वालों के मन में जोष और उत्साह पैदा कर देना है। घरेलू बातचीत मन रमाने का एक ढंग है। इसमें स्पीच की वह सब संजीदगी बेकार हो धक्के खाती फिरती है। जहाँ आदमी को अपनी जिन्दगी मजेदार बनानें के लिये खाने–पीने, चलने–फिरने आदि की जरूरत है वहाँ बातचीत की भी हमको अत्यन्त आवष्यकता है। जो कुछ मवाद या धुआँ जमा रहता है वह सब बातचीत के जरिये भाप बनकर निकल पड़ता है। चित्त हलका और स्वच्छ हो परम आनन्द में मग्न हो जाता है। बातचीत का एक खास तरह का मजा होता है। जिनको बात करने की लत पड़ जाती है वे उसके पीछे खाना–पीना तक छोड़ देते हैं, अपना बड़ा हर्ज कर देना उन्हें पसन्द आता है, पर बातचीत का मजा नहीं खोना चाहते। राबिनसन क्रूसो का किस्सा बहुधा लोगों ने पढ़ा होगा, जिसे सोलह वर्श तक मनुश्य का मुख देखने तक को भी नहीं मिला। कुत्ता, बिल्ली आदि जानवरों के बीच रहा किया। सोलह वर्श के उपरान्त जब उसने फ्राइडे के मुख से एक बात सुनी, यद्यपि उप्लने अपनी जंगली बोली में कहा था, उस समय राबिनसन को ऐसा आनन्द हुआ मानों नये सिरे से फिर से आदमी का चोला पाया। इससे सिद्ध होता है कि मनुश्य को वाक्षक्ति में कहाँ तक लुभा लेने की ताकत है। जिससे केवल पत्र–व्यवहार है, कभी एक बार भी साक्षात्कार नहीं हुआ, उन्हें अपने प्रेमी से कितनी लालसा बात करने की रहती है। अपने आभ्यन्तरिक भाव दूसरे को प्रगट करना और उसका आषय आप ग्रहण कर लेना केवल षब्दों ही के द्वारा हो सकता है

ें तंजं की सीमा दो से लेकर वहाँ तक रक्खी जा सकती है जितनों की जमात, मीटिंग या सभा समझ ली जाय। एडिसन का मत है, असल बातचीत सिर्फ दो में हो सकती है जिसका तात्पर्य यह हुआ कि जब दो आदमी होते हैं तभी अपना दिल दूसरे के सामने खोलते हैं। जब तीन हुए तब वह दो की बात कोसों दूर गयी। दूसरे यह किसी तीसरे आदमी के आ जाते ही या तो दोनों हिजाब में आय अपनी बातचीत से निरस्त हो बैठेंगे या उसे निपट मूर्ख और अज्ञानी समझ बनाने लगेंगे।

जैसे गरम दूध और ठंडे पानी के दो बर्तन पास–पास सटा के रक्खे जाये तो एक असर दूसरे में पहुँचता है। अर्थात् दूध ठंडा हो जाता है और पानी गरमय वैसे ही दो आदमी पास–पास बैठे हों तो एक का गुप्त असर दूसरे पर पहुँच जाता है। चाहे एक दूसरे को देखे भी नहीं और बोलने की कौन कहे, पर एक का दूसरे पर

असर होना षुरू हो जाता है। एक षरीर की विद्युत दूसरे में प्रवेष करने लगती हैं। जब पास बैठने का इतना असर होता है तब बातचीत में कितना अधिक असर होगा इसे कौन न स्वीकार करेगा। अस्तु, अब इस बात को तीन आदमियों के गम में देखना चाहिये, मानो एक त्रिकोण–सा बन जाता है तीनों का चित्त मानो कोण है और तीनों की मनोवृत्ति के प्रसरण की धारा मानो उस त्रिकोण की तीन रेखाएँ हैं। गुपचुप असर तो उन तीनों में परस्पर होता ही है। जो बातचीत तीनों में की गई वह मानो अंगूठी में नग–सा जड़ जाती है। उपरान्त जब चार आदमी हुए तब बेतकल्लुफी को बिल्कुल स्थान नहीं रहता–खुल के बातें न होंगी। जो कुछ बातचीत की जायेगी वह ''फार्मेलिटी'' गौरव और संजीदगी के लच्छे में सनी हुई। चार से अधिक की बातचीत तो केवल रामरमौवल कहलायेगी, उसे सलाप नहीं कह सकत।

इस बातचीत के अनेक भेद हैं। दो बुद्दों की बातचीत प्रायः जमाने की षिकायत पर हुआ करती है, बाबाआदम के समय का ऐसा दास्तान षुरू करते हैं जिसमें चार सच तो दस झूठ। एक बार उनकी बातचीत का घोड़ा छूट जाना चाहिए, पहरों बीत जाने पर भी अन्त न होगा। 'प्रायः अंग्रेजी राज्य पर देष और पुराने समय की बुरी से बुरी रीति–नीति का अनुमोदन और इस समय के सब भाँति लायक नौजवान की निन्दा उनकी बातचीत का मुख्य प्रकरण होगा।

अब इसके विपरीत नौजवानों की बातचीत का कुछ तर्ज ही निराला है। जोष उत्साह, नयी उमंग, नया हौसला आदि मुख्य प्रकरण उनकी बातचीत का होगा। पढ़े–लिखे हुए तो षेक्सपियर, मिलटन, मिल और स्पेन्सर उनकी जीभ के आगे नाचा करेंगे। अपनी लियाकत के नषे में चूर–चूर हमचुनी दीगरे नेस्त । अक्खड़ कुष्तीबाज हुए तो अपनी पहलवानी और अक्खड़पन की चर्चा छेड़ेंगे। आषिकतन हुए तो अपनी–अपनी प्रेमपत्री की प्रषंसा तथा आषिकतन बनने की हिमाकत की डींग मारेंगे। दो ज्ञात–यौवन हमउमर सहेलियों की बातचीत का कुछ जायका ही निराला है। रस का समुद्र मानो उमड़ा चला आ रहा है। इसका पूरा स्वाद उन्हीं से पूछना चाहिये जिन्हें ऐसों की रससनी बातें सुनने का कभी भाग्य लड़ा है। अर्द्ध ाजरती बुढ़ियाओं की बातचीत का मुख्य प्रकरण बहू–बेटी वाली हुई तो अपनी–अपनी बहुओं या बेटियों का गिला–षिकवा होगा या बिरादराने का कोई ऐसा राम–रसरा छेड़ बैठेंगी कि बात करते–करते अन्त में खोड़े दाँत निकाल–निकाल लड़ने लगेंगी । लड़कों की बातचीत में खेलाड़ी हुए तो अपनी–अपनी आवारगी की तारीफ करने के बाद कोई ऐसी सलाह गाठेंगे, जिसमें उनको अपनी षैतानी जाहिर करने का पूरा मौका मिले। स्कूल के लड़कों की बातचीत का उद्देष्य अपने उस्ताद की षिकायत या तारीफ या अपने सहपाठियों में से किसी के गुन–ऐगुन का

कथोपकथन होता है। पढ़ने में तेज हुआ तो कभी अपने मुकाबले दूसरे की कैफियत न देगा, सुस्त और बोदा हुआ तो दबी बिल्ली–सा स्कूल भर को अपना गुरु ही मानेगा। अलावे इसके बातचीत की और बहुत सी किस्में हैं राजकाज की बात, व्यापार सम्बन्धी बातचीत, दो मित्रों में प्रेमालाप इत्यादि। हमारे देष में नीच जाति के लोगों में बात कही होती है लडकी–लड़के वाले की ओर से। एक–एक आदमी बिचवई होकर दोनों के विवाह–सम्बन्ध की कुछ बातचीत करते हैं उस दिन से बिरादरी वालों को जाहिर कर दिया जाता है कि अमुक लड़की से अमुक लड़के के साथ विवाह पक्का हो गया और यह रसम बड़े उत्साह के साथ की जाती है। एक चण्डुखाने की बातचीत होती है इत्यादि, इस बात करने के अनेक प्रकार और ढंग हैं।

यूरोप के लोगों में बात करने का एक हुनर है। "आर्ट ऑफ् कनवरसेषन'' यहाँ तक बढ़ा है कि स्पीच और लेख इसे नहीं पाते। इसकी पूर्ण षोभा काव्यकलाप्रवीण विद्वमण्डली में है। ऐसे–ऐसे चतुराई के प्रसंग छेड़े जाते हैं कि जिन्हें सुन कान को अद्भुत सुख मिलता है। सहृदय गोश्ठी इसी का नाम है। सहृदय गोश्ठी की बातचीत की यही तारीफ है कि बात करने वालों की लियाकत अथवा पाण्डित्य का अभिमान कपट कहीं एक बात में न प्रगट हो वरन् जितने क्रम रसाभास पैदा करने वाले सबों को बरकाते हुए चतुर सयाने अपनी बातचीत का उपक्रम रखते हैं जो हमारे आधुनिक षुश्क पण्डितों की बातचीत में जिसे षास्त्रार्थ कहते है, कभी आवेग ही नहीं। मुर्ग और बटेर की लड़ाइयों की झपटा–झपटी के समान जिनकी नीरस कॉव–कॉब में सरस संलाप की तो चर्चा ही चलाना व्यर्थ है, वरन् कपट और एक–दूसरे को अपने पाण्डित्य के प्रकाष के वाद में परास्त करने का संघर्श आदि रसाभास की सामग्री वहाँ बहुतायत के साथ आपको मिलेगी । घण्टे भर तक कॉंव–कॉंव करते रहेंगे, तय कुछ न होगा। बड़ी–बड़ी कम्पनी और कारखाना, बड़े से बड़े काम इसी तरह पहले दो–चार दिली दोस्तों की बातचीत ही से षुरू किये गये, उपरान्त बढ़ते–बढ़ते यहाँ तक बढ़े कि हजारों मनुश्यों की उसमें जीविका और लाखों की साल में आमदनी है। पचीस वर्श के ऊपर वालों की बातचीत अवष्य होगी और पच्चीस से नीचे वालों की बातचीत में यद्यपि अनुभव, दूरदर्षिता और गौरव नहीं पाया जाता, पर इसमें एक प्रकार का ऐसा दिबहलाव और ताजगी रहती हैं कि जिसकी मिठास उससे दसगुना अधिक बढ़ी चढ़ी है। यहाँ तक हमने बाहरी बातचीत का हाल लिखा, जिसमें दूसरे फरीक के होने की बात की बहु ही आवष्यकता है। बिना किसी दूसरे मनुश्य के हुए जो किसी तरह का सम्भव नहीं है और जो दो ही तरह हो सकती है या तो कोई हमारे यहाँ कृपा करे या हम जाकर दूसरे को सर्फराज करें। पर यह सब तो दुनियादारी है,

जिसमें कभी–कभी रसाभास होते देर नहीं लगती क्योंकि जो महाषय अपने यहाँ गये तो पहले बिना बुलाये जाना ही अनादर का मूल है और जाने पर अपने मनमाफिक बर्ताव न किया गया तो मानो एक दूसरे प्रकार का नया घाव हुआ। इसलिये सबसे उत्तम प्रकार बातचीत करने का हम यही समझते हैं कि हम ह षक्ति अपने में पैदा कर सकें ह षक्ति अपने में पैदा कर सक कि अपने आप बात कर लिया करें। हमारी भीतरी मनोवरत्ति जो प्रतिक्षण नये–नये रंग दिखलाया करती है और जो बाह्य प्रपंचात्मक संसार का बड़ा भारी आईना है, जिसमें जैसी चाहो वैसी सूरत देख लेना कुछ दुर्घट बात नहीं है और जो एक ऐसा चमनिस्तान है, जिसमें हर किस्म के बेल–बूटे खिले हुए है। इस चमनिस्तान की सैर क्या कम दिल बहलाव है? मित्रों का प्रेमालापै कभी इसकी सोलहवीं कला तक भी पहुँच सकता है? इसी सैर का नाम ध्यान या मनोयोग या चित का एकाग्र करना है। जिसका साधन एक–दो दिन का काम नहीं, वरन् साल दो साल के अभ्यास के उपरान्त यदि हम थोड़ी भी अपनी मनोवत्ति स्थिर कर अवाक् हो अपने मन के साथ बातचीत कर सकें तो मानो अति भाग्य है। एक वाक्– षक्तिमात्र के दमन से न जानिये कितने प्रकार का दमन हो गया। हमारी जिह्वा जो कतरनी के समान सदा स्वच्छन्द चला करती है उसे यदि हमने दबाकर अपने काबू में कर लिया तो योधादिक बड़े–बड़े अजेय षत्रुओं को बिना प्रयास जीत अपने वष कर डाला। इसलिए अवाक् रह अपने आप बातचीत करने का यह साधन यावत् साध न का मूल है, षान्ति का परम पूज्य मन्दिर है, परमार्थ का एकमात्र सोपान है।

रामायण ख महावीर प्रसाद द्विवेदी द्य काव्यों के दो बड़े भाग किये जा सकते हैं। एक वह जिसमें केवल कवि की ही कथा हो, और दूसरा वह जिसका सर्वसाधारण या एक बड़े सम्प्रदाय की कथा से सम्बन्ध हो। पहली श्रेणी के काव्यों का यह मतलब नहीं, कि जिन्हें सिवा कवि के और कोई समझ ही न सके, क्योंकि यदि ऐसा हो तो वे केवल एक पागल की बकवास मात्र समझे जायेंगे। ऐसे काव्यों से उन काव्यों का मतलब है जिनमें कवि ने अपपनी प्रतिभा के बल से निज के सुख–दुख, निज की कल्पना और निज ही के जीवन के अनुभवों द्वारा सारे मनुश्य–सम्प्रदाय के चिरन्तन ह्रदय विकारों और ह्रदय के गुप्त रहस्यों को प्रकट किया हो। दूसरी श्रेणी के काव्य उन कवियों द्वारा रचे जाते हैं जो अपनी रचनाओं द्वारा समग्र देष अथवा समग्र युग के भावों और अनुभवों को प्रकट करके अपने ग्रन्थों को मानव–जाति का जीवन–धन बना जाते हैं। इसी प्रकार के कवियों को महाकवि कहना चाहिए। देष भर, अथवा जाति भर, उन्हीं के द्वारा बोलती हुई मालूम पड़ती है। ऐसे महाकवियों की वष्क्ष रचना किसी व्यक्ति विषेश की रचना के समान नहीं मजंज`ज तंदज बन के`तम`अं के सदर होती है। इसमें सन्देह नहीं

कि होती। उनकी रचना बरहद षकुन्तला और कुमार—सम्भव में कालिदास की निपुणता का अच्छा परिचय मिलता है, परन्तु भारतवर्श के लिए रामायण और महाभारत पुनीत जाह्नवी और षिखर—राज हिमाचल के संदष हैं। व्यास और वाल्मीकि तो केवल उपलक्ष—मात्र वास्तव में व्यास और वाल्मीकि किसी व्यक्ति विषेश के नाम नहीं। ये नाम तो केवल किसी उद्देष्य से रख लिये गये हैं। इन दो बड़े ग्रन्थों के इन दो महाकाव्यों के जो भारतवर्श में इतने मान्य हैं, रचयिताओं के नाम का पता नहींय कवि अपने ही काव्यों में बिल्कुल छिप से गये हैं।

हमारे देष में रामायण और महाभारत जिस प्रकार के ग्रन्थ है, प्राचीन ग्रीस में उसी प्रकार का ग्रन्थ इलियड था। समस्त ग्रीस में उसका आदर और प्रवेष था। कवि होमर ने अपने देष और काल के कण्ठ में अपनी भाशा – दान की थी। उसके वाक्य उसके देष के एक कोने से दूसरे कोने तक गूंज उठे और चिकाल तक गूंजते रहे।

किसी आधुनिक काव्य में इतनी व्यापकता नहीं पायी जाती है। मिल्टन के 'पेराडाइज लॉस्ट' नामक ग्रन्थ में भाशा का उत्कर्श, प्रयुक्त छंदों का गाम्भीर्य और रस की गंभीरता की कमी नहीं तो भी वह सारे देष का धन नहीं। वह तो केवल पुस्तकालयों के आदर की सामग्री है।

अतएव प्राचीन काव्यों को एक पष्थक् श्रेणी में रखना चाहिए। प्राचीन काल में वे देवताओं और दैत्यों की तरह विषालकाय थे, परन्तु वर्तमान समय में उस श्रेणी के काव्य लुप्त हो गये हैं। प्राचीन आर्य सभ्यता की एक धारा यूरोप को गई, दूसरी भारत को आई। इन धाराओं से यूरोप और भारत दोनों स्थानों में दो—दो महाकाव्यों की उत्पत्ति हुई। इन्हीं महाकाव्यों के द्वारा उन दोनों धाराओं की सभ्यता के इतिहास और संगीत की रक्षा होती रही हैं। मैं विदेषी ठहरा, इसलिए ग्रीस के विशय में मैं यह निष्चयपूर्वक नहीं कह सकता कि उसने अपने दोनों महाकाव्यों द्वारा अपनी सारी प्रकृति को प्रकट करने में सफलता प्राप्त की है या नहींय परन्तु यह निष्चय है कि भारतवर्श ने रामायण और महाभारत में कुछ बाकी नहीं रक्खा।

इसी कारण षताब्दियों पर षताब्दियाँ व्यतीत हो जाने पर भी भारत में रामायण और महाभारत का वैसा ही प्रचार है। उनका सोता जरा भी षुश्क नहीं हुआ। प्रतिदिन घर—घर में गाँव—गाँव में उनका पाठ होता है। बनिये की दुकान में और राजा के महल में सब जगह उनका समान आदर होता है। धन्य हैं वे दोनों महाकवि ! उनके नाम तो काल के महा—प्रषस्त विस्तार से लुप्त हो गये, किन्तु उनकी वाणी आज तक करोड़ों नर—नारियों के मनों में भक्ति और षांति की ऐसी प्रबल लहरों का उत्थित करती है, जो हजारों वर्श की उत्तमोतम मिट्टी लाकर आधुनिक भारत के हृदय को उर्वरा करती है।

इसलिए रामायण और महाभारत की समालोचना का आदर्ष अन्य काव्यों की समालोचना के आदर्ष से भिन्न होना चाहिए। राम का चरित उच्च था या नीच और लक्ष्मण का चरित भला लगता है या नहीं – केवल इतनी आलोचना यथेश्ट नहीं है। समालोचक को श्रद्धापूर्वक इस बात पर भी विचार करना चाहिए कि समस्त भारतवर्श सहस्त्रों वर्शों से इन महाकाव्यों को किस दर्षश्ट से देखता आता है।

यहाँ पर हमें इस बात पर विचार करना है कि यह कौन–सा संदेष हैं जो रामायण द्वारा भारतवर्श को प्राप्त होता है और कौन–सा आदर्ष है, जो रामायण भारतवर्श के आगे रखती है। साधारणतः लोगों ने समझ रक्खा है कि वीर रस–प्रधान काव्यों का ही नाम 'एपिक' है। इसका कारण यह है कि जिस देष और जिस काल में वीर रस का गौरव प्रधान रहा हो, उस देष और काल के महाकाव्य भी अवष्य ही वीर रस से पूर्ण होंगे। रामायण में यथेश्ट मार–काट का वर्णन है। राम में भी असाधारण बल थाय किन्तु तो भी रामायण में जो रस प्रधान है, वह वीर रस नहीं। रामायण में षारीरिक–बल–प्राधान्य प्रकट नहीं किया गया–युद्ध की घटनाओं का वर्णन करना उसका मुख्य विशय नहीं।

यह भी सच नहीं कि इस महाकाव्य में केवल देवता की अवतार लीलाओं का वर्णन है। कवि वाल्मीकि ने राम को अवतार नहीं माना, उन्होंने राम को मनुश्य ही माना है। हम यहाँ संक्षेप में कह देना चाहते हैं कि यदि कवि ने रामायण में नर–चरित्र के बदले में देव चरित्र का वर्णन किया होता तो रामायण के गौरव का बहुत कुछ हास हो जाता। राम चरित्र इसलिए महाभान्वित है कि यह मनुश्य – चरित्र से परे नहीं। रामायण में ऐसे सद्गुणों पूर्ण पुरुशों की कथा है जिनसे विभूशित नायक की वाल्मीकि को अपने काव्य के लिए जरूरत थी । बालकाण्ड के प्रथम सर्ग में वाल्मीकि नारद से सारे सद्गुणों से सम्पन्न नायक का नाम पूछते हैं। उत्तर में नारद कहते

- '' देवताओं में ऐसा कोई नहीं, मनुश्यों में राम ही सब गुणों से युक्त है।

इसीलिए रामायण में किसी देवता की कथा नहीं, उसमें नरकथा का ही प्राधान्य है। किसी देवता ने मनुश्य का अवतार नहीं लिया। राम नामक मनुश्य ही अपने सद्गुणों के कारण देवता बन गया। महाकवि ने परमादर्ष की स्थापना के लिए ही इस महाकाव्य को रचा था। तब से आज पर्यन्त भारतवासी बड़े आग्रह के साथ मनुश्य के इस आदर्ष चरित्र वर्णन को पढ़ते हैं। रामायण में सबसे बड़ी विषेशता यह है कि उसमें एक ही घर की कथा वष्हद् रूप से वर्णन की गई है। पिता–पुत्र में, भाई–भाई में, पति–पत्नी में जो धर्म बन्धन हाता है– जो प्रति और भक्ति का सम्बन्ध होता वह उसमें इतना ऊँचा दर्षाया गया है कि सहज ही में महाकाव्य के

अनुरूप कहा जा सकता है। अन्य महाकाव्यों का गौरव उनमें वर्णन किए हुए विजय, षत्रु दमन और दो विरोधी पक्षों का आपस में रक्तपात आदि घटनाओं के वर्णन से होता है। परन्तु रामायण की महिमा राम–रावण युद्ध के कारण नहीं। इस युद्ध–घटना का वर्णन तो केवल राम और सीता के उज्जवल दाम्पत्य प्रेम का दर्षन कराने के लिए है। रामायण में केवल यही दिखाया गया कि पुत्र का पिता की आज्ञा का पालन, भाई का भाई के लिए आत्म–त्याग, पत्नी की पति के प्रति निश्ठा और राजा का प्रजा के प्रति कर्तव्य कहाँ तक हो सकता है। किसी देष के महाकाव्य में इस प्रकार व्यक्ति–विषेश का घरु सम्बन्ध इतना वर्णनीय विशय नहीं समझा गया है।पूर्वोक्त बातों से केवल कवि का परिचय नहीं मिलता, सारे भारतवर्श का परिचयमिलता इससे यह मालूम होता है कि भारत में गरह और गरह–धर्म कितने महानसमझे जाते थे। इस महाकाव्य से यह बात स्पश्टतापूर्वक सिद्ध होती है कि हमारेदेष में गरहस्थाश्रम का स्थान कितना ऊँचा है।

गरहस्थाश्रम हमारे ही सुख औरसुभीते के लिए नहीं, गरहस्थाश्रम सारे समाज को धारण करने वाला है। वहमनुश्य के यथार्थ भावों को दीप्त करता है। वह भारतवर्शीय समाज की नींव है।रामायण उसी गष्हस्थाश्रम के महत्व को दिखाने वाला महाकाव्य है। कश्ट औरवनवास के दुख दिखाकर रामायण इसी गरहस्थाश्रम को और भी अधिक गौरवदान करती है। कैकेयी और मंथरा की कुमंत्रणा ने अयोध्या के राज–गरह कोविचलित कर दिया। उस समय जो दुर्भेद दृढ़ता देखी गई, उसका रामायण मेंअच्छा दिग्दर्षन कराया गया

इकाई– 6 राहुल सांकृत्यायन (सन् 1893–1963),रामधारी सिंह दिनकर (सन् 1908–1974 ई-) सियाराम शरण गुप्त (सना 1895–1963 ई-)

विजय की अभिलाशा को नहीं, राजनैतिक महत्व को नहीं–किन्तु षांतियुक्त 'मानस' की धर्म–भूमिख आचार्य रामचन्द्र षुक्ल ,धर्म की रसात्मक अनुभूति का नाम भक्ति हैं, यह हम कहीं पर कह चुके हैं। धर्म

है ब्रह्म के स्त्स्वरूप की प्रवत्ति, जिसकी असीमता का आभास अखिल विष्व–स्थिति में मिलता है। इस प्रवत्ति का साक्षात्कार परिवार और समाज ऐसे छोटे क्षेत्रों से लेकर समस्त भू–मण्डल और अखिल विष्व तक के बीच किया जा सकता है। परिवार और समाज की रक्षा में, लाक के परिचालन में समश्टि रूप में अखिल विष्व की षाष्वत स्थिति में सत् की इसी प्रवत्ति के दर्षन होते हैं। ध्यान देने की

बात यह है कि सत्स्वरूप की इस प्रवत्ति का साक्षात्कार जितने ही विस्तष्त क्षेत्र के बीच हम करते हैं, भगवत्स्वरूप की ओर उतनी ही बढ़ी हुई भावना, हमें प्राप्त होती है। कुल–विषेश के भीतर ही जो इस प्रवत्ति का अनुभव करेंगे उनकी भावना कुल–नायक या कुल–देवता तक ही पहुँचेगीय किसी जाति या देष–विदेष के भीतर जो करेंगे, उनकी भावना उस जाति या देष के नेता अथवा उपसाय देवता तक पहुँचकर रह जाएगी। भक्त की भावना इतनी ही दूर जाकर सन्तुश्ट नहीं होती। वह अखिल विष्व के बीच सत् की इस प्रवषत्त के साक्षात्कार की साधना करता है। उसके भीतर का 'चित' जब बाहर 'सत' का साक्षात्कार करता है तब आनन्द का आविर्भाव होता है। इस साधना द्वारा वह भगवान् का सामीप्य लाभ करता चला जाता है। इसी से तुलसी को राम 'अंतरजामिहु ते बड़ बाहिरजामी लगते हैं।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उससे सत्स्वरूप की व्यक्त प्रवत्ति अर्थात् धार्म की ऊँची–नीची कई भूमियाँ लक्षित होती हैं– जैसे गरहधर्म, कुलधर्म समाजधर्म, लोकधर्म और विष्वधर्म या पूर्णधर्म। किसी परिमित वर्ग के कल्याण से सम्बन्ध रखने वाले धर्म की अपेक्षा विस्तष्त जनसमूह के कल्याण से सम्बन्ध रखने वाला धर्म, उच्च कोटि का है। धर्म की उच्चता उसके लक्ष्य के व्यपकत्व के अनुसार समझी जाती है। गरह धर्म या कुलधर्म से समाज धर्म श्रेश्ठ हैं, समाज–धर्म से लोकधर्म, लोकधर्म से विष्वधर्म, जिसमें धर्म अपने षुद्ध और पूर्णस्वरूप में दिखाई पड़ता है। यह पूर्ण धर्म अंगी है और षेश धर्म अंग । पूर्ण धर्म, जिसका सम्बन्ध अखिल विष्व की स्थिति रक्षा से है, वस्तुतः पूर्ण पुरुश या पुरुशोत्तम में ही रहता है, जिसकी मार्मिक अनुभूति सच्चे भक्तों को ही हुआ करती है। इसी अनुभूति के अनुरूप उनके आचरण का भी उत्तरोत्तर विकास हो जाता है। गरहधर्म पर दर्षश्ट रखने वाला किसी परिवार की रक्षा देखकर, वर्गधर्म पर दर्षश्ट रखने वाला किसी वर्ग या समाज की रक्षा देखकर और लोकधर्म पर दर्षश्ट रखने वाला लोक या समस्त मनुश्य जाति की रक्षा देखकर आनन्द का अनुभव करता है। पूर्ण या षुद्ध धर्म का स्वरूप सच्चे भक्त ही अपने और दूसरों के सामने लाया करते हैं जिनके भगवान् पूर्ण धर्मस्वरूप हैं, अतः ये कीट पतंग से लेकर मनुश्य तक सब प्राणियों की रक्षा देखकर आनन्द प्राप्त करते हैं। विशय की व्यापकता के अनुसार उनका आनन्द भी उच्च कोटि का होता है। धर्म की जो ऊँची–नीची भूमियाँ ऊपर कहीं गई हैं वे उसके स्वरूप के सम्बन्ध में, उसके पालन के स्वरूप के सम्बन्ध में नहीं। पालन का स्वरूप और बात है। उच्च से उच्च भूमि के धर्म का आचरण अत्यन्त साधारण कोटि का हो सकता है। इसी प्रकार निम्न भूमि के धर्म का आचरण उच्च से उच्च कोटि का हो सकता है। गरीबों का गला काटने वाले चींटियों के बिलों

पर आटा फैलाते देखे जाते हैं, अकाल पीडितों की सहायता में एक पैसा चन्दा न देने वाले अपने डूबते मित्र को बचाने के लिये प्राण संकट में डालते देखे जाते हैं। यह हम कई जगह दिखा चुके हैं कि ब्रह्म के सत्य रूप की अभिव्यक्ति और प्रवरति लेकर गोस्वामीजी की भक्ति पद्धति चली है। उनके राम पूर्ण धर्मस्वरूप हैं। राम के लीला–क्षेत्र के भीतर धर्म के विविध रूपों का प्रकाष उन्होंने देखा है। धर्म का प्रकाष अर्थात् ब्रह्म के सत्स्वरूप का प्रकाष इसी नाम–रूपतामक व्यक्त जगत् के बीच होता है। भगवान् की इस स्थिति–विधायिनी व्यक्त कला में हृदय त रमाकर, बाह्य जगत् के नाना कर्म क्षेत्रों के बीच ध में की दिव्य ज्योति के स्फुरण का दर्षन न करके जो आँख मूँदे अपने अन्तःकरण के किसी कोने में ही ईष्वर को ढूँढा करते हैं। उनके मार्ग से गोस्वामीजी का भक्ति मार्ग अलग है। उनका मार्ग ब्रह्म का सत्स्वरूप पकड़कर, धर्म की नाना भूमियों पर से होता हुआ जाता लोक में जब कभी भक्त को धर्म का स्वरूप तिरोहित या आच्छादित दिखता है तब मानो भगवान् उसकी दर्षश्ट से खुली हुई आँखों के सामने से ओझल हो जाते हैं और वह वियोग की आकुलता का अनुभव करता है। फिर जब अधर्म का अंधकार फाड़कर धर्म ज्योति फूट पड़ती है तब मानो उसके प्रिय भगवान् का मनोहर रूप सामने आ जाता है और वह पुलकित हो उठता है।

हमारे यहाँ धर्म से अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों की सिद्धि कही गई है। अतः मोक्ष का किसी ढंग के मोक्ष का मार्ग धर्ममार्ग से बिल्कुल अलग–अलग नहीं जा सकता। धर्म का विकास इसी लोक के बीच हमारे परस्पर व्यवहार के भीतर होता है। अतः हमारे जीवन की पूर्णता कर्म (धर्म), ज्ञान और भक्ति तीनों के समन्वय में है। साधना किसी प्रकार की हो, साध क की पूरी सत्ता के साथ होनी चाहिए — उसके किसी अंग को सर्वथा छोड़कर नहीं। यह हो सकता है कि कोई ज्ञान को प्रधान रखकर धर्म और उपासना को, अंगरूप में लेकर चलेय कोई भक्ति को प्रध ाान रखकर ज्ञान और कर्म को अंगरूप में रखकर चले। तुलसीदासजी भक्ति को प्रधान रखकर चलने वाले अर्थात् भक्तिमार्गी थे। उनकी भक्ति भावना में यद्यपि तीनों का योग है, पर धर्म का योग पूर्ण परिमाण में है। धर्म–भावना का उनकी भक्ति–भावना से नित्य सम्बन्ध है।

'रामचरितमानस' में धर्म की ऊँची–नीची विविध भूमियों की झाँकी हमें मिलती है। इस वैविध्य के कारण कहीं–कहीं कुछ षंकाएँ भी उठती हैं। उदाहरण के लिए भरत और विभीशण के चरित्रों को लीजिए।

जिस भरत के लोकपावन चरित्र की दिव्य–दीप्ति से हमारा हृदय जगमगा उठता है, उन्हीं को अपनी माता को चुन–चुनकर कठोर वचन सुनाते देख कुछ लोग संदेह में पड़ जाते हैं। जो तुलसीदास लोकधर्म या षिश्ट मर्यादा का इतना ध्यान

रखते थे, उन्होंने अपने सर्वोत्कृाट पात्र द्वारा उसका उल्लंघन कैसे कराया ? धर्म की विविध भूमियों के सम्बन्ध में जो विचार हम ऊपर प्रकट कर आए हैं उन पर दषश्टि रखकर यदि समझा जाए तो इसका उत्तर षीघ्र मिल जाता है। यह हम कह आए हैं कि धर्म जितने ही अधिक विस्तरत जन समूह के सुख–दुःख से सम्बन्ध रखने वाला होगा, उतनी ही उच्च श्रेणी का माना जाएगा। धर्म के स्वरूप की उच्चता उसके लक्ष्य की व्यापकता के अनुसार समझी जाती है। जहाँ धर्म की पूर्ण षुद्ध और व्यापक भावना का तिरस्कार दिखाई पड़ेगा वहाँ उत्कट पात्र के हृदय में भी रोश का आविर्भाव स्वाभाविक है। राम पूर्ण धर्मस्वरूप हैं क्योंकि अखिल विष्व की स्थिति उन्हीं में है। धर्म का विरोध और राम का विरोध एक ही बात है। जिसे राम प्रिय नहीं उसे धर्म प्रिय नहीं, इसी से गोस्वामीजी कहते हैं जाके प्रिय न राम वैदेही।

सो नर तजि कोटि बैरी, सम, यद्यपि परम सनेहीं!कृ

इस राम–विरोध या धर्म–विरोध का व्यापक दुश्परिणाम भी आगे आता है। राम–सीता के घर से निकलते ही सारी प्रजा षोकमग्न हो जाती है, दषरथ प्राण त्याग करते हैं। भरत कोई संसार त्यागी विरक्त नहीं थे कि धर्म का ऐसा तिरस्कार और उस तिरस्कार का ऐसा कटु परिणाम देखकर भी क्रोध न करते या साधुता के प्रदर्षन के लिए उसे पी जाते । यदि वे अपनी माता को, माता होने के कारण, कटु वचन तक न कहते तो उनके राम–प्रेम का, उनकी मनोवृत्तियों के बीच क्या स्थान दिखाई पड़ता ? जो प्रिय का तिरस्कार और पीड़न देख क्षुब्ध न हो, उसके प्रेम का पता कहाँ लगाया जाएगा? भरत धर्म–स्वरूप भगवान् रामचन्द्र के सच्चे प्रेमी और भक्त के रूप में हमारे सामने रखे गए हैं। अतः काव्य दृश्टि से भी यदि देखिए तो तो इस अमर्श के द्वारा उनके राम–प्रेम की जो व्यंजना हुई है वह अपना एक विषेश लक्ष्य रखती है। महाकाव्य या खंडकाव्य के भीतर जहाँ धर्म पर क्रूर और निश्ठुर आघात सामने आता है वहाँ श्रेता या पाठक का हृदय अन्यायी का उचित दण्ड–धिग्दण्ड के रूप में सही देखने के लिए छटपटाता है। यदि कथा वस्तु के भीतर उसे दण्ड देने वाला पात्र मिल जात है तो पाठक या श्रोता की भावना तुश्ट हो जाती है। इसके लिए भरत से बढ़कर उपयुक्त और कौन पात्र हो सकता था? जिन भरत के लिए ही कैकेयी ने सारा अनर्थ खड़ा किया वे ही जब उसे धिक्कारते हैं, तब कैकेयी को कितनी आत्मग्लानि हुई होगी। ऐसी आत्मग्लानि उत्पन्न करने की ओर भी कवि का लक्ष्य था। इस दरजे की आत्मग्लानि और किसी युक्ति से उत्पन्न नहीं की जा सकती थी ।

सारांष यह है कि यदि कहीं मूल या व्यापक लक्ष्य वाले धर्म की अवहेलना हो तो उसके मार्मिक और प्रभावषाली विरोध के लिए किसी परिमित क्षेत्र के धर्म या

मार्यादा का उल्लंघन असंगत नहीं। काव्य में तो प्रायः ऐसी अवहेलना से उत्पन्न क्षोभ की अबोध व्यंजना के लिए मर्यादा का उल्लंघन आवष्यक हो जाता है।
अब विभीशण को लीजिए, जिसे गरहनीति या कुलधर्म की स्थूल और संकुचित दश्टि के लोग 'घर का भेदिया' या भ्रातरद्रोही कह सकते हैं। तुलसीदासजी ने उसे भगवद्भक्त के रूप में लिया है। उसे भक्तों की श्रेणी में दाखिल करते समय गोस्वामीजी की दश्टि गरहनीति या कुलधर्म की संकुचित सीमा के भीतर बंधी न रहकर व्यापक लक्ष्य वाले धर्म की ओर थी। धर्म की उच्च और व्यापक भावना के अनुसार विभीशण को भक्त का स्वरूप प्रदान किया गया है। रावण लाकपीड़क है, उसके अत्याचार से तीनों लोक व्याकुल हैं, उसके अनुयायी अकारण लोगों को सताते हैं और ऋशियों–मुनियों का वध करते हैं। विभीशण इन सब बातों से अलग दिखाया गया है। वह रावण का भाई होकर भी लंका के एक कोने में साध ु–जीवन व्यतीत करता है। उसके हृदय में अखिल लोकरक्षक भगवान् की भक्ति है।
सीताहरण होने पर रावण का अधर्म पराकाश्ठा को पहुँचा दिखाई पड़ता है। हनुमान से भेंट होने पर उसे धर्मस्वरूप भगवान् के अवतार हो जाने का आभास मिलता है। उसकी उच्च धर्म भावना और भी जग पड़ती हैं। वह अपने बड़े भाई रावण को समझाता हैं जब वह किसी प्रकार नहीं मानता, तब उसके सामने धर्मों के पालन का सवाल आता है– एक ओर गरहधर्म या कुलधर्म के पालन का, दूसरी ओर उससे अधिक उच्च और व्यापक धर्म के पालन का। भक्त की ध र्मभावना अपने गरह या कुल के तंग घेरे के भीतर बद्ध नहीं रह सकती। वह समस्त विष्व के कलयाण का व्यापक लक्ष्य रखकर प्रवष्त होता है। अतः वह चट लोक–कलयाण विधायक धर्म का अवलम्बन करता है और धर्ममूर्ति भगवान् श्रीराम की षरण में जाता है।
भारतीय संस्कृति ख गुलाबराय ,
'संस्कृति' षब्द का सम्बन्ध संस्कार से है, जिसका अर्थ है संषोधन करना, उत्तम बनाना, परिश्कार करना। अंग्रेजी षब्द 'कल्चर' में वही धातु है जो 'एग्रीकल्चर' में है। इसका भी अर्थ 'पैदा करना, सुधारना' है। संस्कार व्यक्ति के भी होते हैं और जाति के भी। जातीय संस्कारों की ही संस्कृति कहते हैं। संस्कृति एक समूहवाचक षब्द है। जलवायु के अनुकूल रहन–सहन की विधियों और विचार–परम्पराओं से जाति के लोगों में दृढमूल हो जाने से जाति के संस्कार बन जाते हैं। इनको प्रत्येक व्यक्ति अपनी निजी प्रकृति के अनुकूल न्यूनाधिक मात्रा में पैत्रिक सम्पत्ति के रूप में प्राप्त करता है। ये संस्कार व्यक्ति के घरेलू जीवन तथा सामाजिक जीवन में परिलक्षित होते हैं। मनुश्य अकेला रहकर भी इससे छुटकारा नहीं पा सकता। ये

संस्कार दूसरे देष में निवास करने अथवा दूसरे देषवासियों के संपर्क में आने से कुछ परिवर्तित भी हो सकते हैं और कभी–कभी दब भी जाते हैं, किन्तु अनुकूल वातावरण प्राप्त करने पर फिर उभर आते हैं।

संस्कृति का बाह्य पक्ष भी होता है और आंतरिक भी। उसका बाह्य पक्ष आंतरिक का प्रतिबिंब नहीं तो उससे सम्बन्धित अवष्य रहता है। हमारे बाह्य आचार हमारे विचारों और मनोवरत्तियों के परिचायक होते हैं। संस्कृति एक देष–विषेश की उपज होती है, उसका सम्बन्ध देष के भौतिक वातावरण और उसमें पालित, पोशित एवं परिवद्धित विचारों से होता है।

भाशा संस्कृति का कुछ बाहरी अंग–सा है, फिर भी वह हमारी जातीय मनोवरति की परिचायिका होती है। 'कुषल' षब्द को ही लीजिए। वह हमारी उस संस्कृति की ओर संकेत करता है जिसमें कि पूजा–विधान की संपन्नता के लिए कुष लाना एक दैनिक कार्य बना हुआ था। जो कुष ला सकता था, वह तन्दुरुस्त भी और होषियार भी समझा जाता था। 'प्रवीण का सम्बन्ध वीणा से है प्रकर्शः वीणाया प्रवीणः। हमारी भाशा में 'गो' से सम्बन्धित षब्दों का बाहुल्य है, जैसे गोधूली–वेला (जिसमें विवाह जैसे षुभ कार्य संपन्न होते हैं), गोश्ठी, गवेशण (गाय की चाह या खोज के अर्थ–विस्तार द्वारा गवेशण का अर्थ 'खोज' हो गया), गवाक्ष (गौ की आँख खिड़कियों का आकार षायद पहले गोल होता होगा), गुरसी (अंगीठी गारसी से बनी जिसमें गौ का दूध औटाया जाता था), गोपुच्छ (नाटक के संगठन को गौ की पूँछ के समान बताया गया है, अन्त में आकार मूल कथा ही रह जाती है और उसका फैलाव बन्द हो जाता है), गोमुखी (जिसके भीतर माला फेरी जाती है और जिसमें जल गिरता है उसे भी कहते गोपन (छिपाना, यह षब्द भी गो से सम्बन्ध रखता है जो वस्तु पाली जाती है, सुरक्षित रक्खी जाती है, वह छिपाकर भी रक्खी जाती है) आदि, यह बाहुल्य हमारे समाज में गौ की प्रधानता का द्योतक है।

भारत गरम देष है। यहाँ हृदय को षीतल करना एक मुहावरा है, किन्तु आंग्ल देष ठण्डा है, जहाँ की परिस्थिति के अनुकूल ूतउ तमबमचजपवद (वार्म रिसेप्षन) और बवसक–जतमंजउमदज कॉल्ड ट्रीटमेंट) आदि मुहावरे है। ठतमांपदह जीम पबम (ब्रेकिंग दि आइस) मौन भंग करने के अर्थ में आता है और पबम (आइस) उण्डेपन का प्रतीक है। मौन ठण्डेपन का हो द्योतक है। अंग्रेजी का प्रयोग प्दपजसपदह जूव इमके ूपजइ वदम `जवदम (किलिंग टू बर्ड्स विथ वन स्टोन) वहाँ को हिंसात्मक प्रवृत्ति का परिचायक है। हमारे यहाँ इसका अनुवाद हुआ है–'एक ढेले में दो पंक्षी' किन्तु उसमें वह मधुरता नहीं जो 'एक पंथ दो काज' में है! उसके कहते ही हमको 'गोरस बेचन हरि मिलन, एक पंथ दो काज' की बात याद आ जाती है।

हमारी रहन सहन, पोषाक आदि सभी बातें जातीय परिस्थिति, देष के वातावरण और देष की. भावनाओं से सम्बन्धित हैं। जमीन पर बैठना, हाथ से खाना, नहाकर खाना, लम्बे ढीले कपड़े पहनना, बेसिले कपड़ों को अधिक षुद्ध मानना, ये सब चीजें देष की आवष्यकताओं और आदर्षों के अनुकूल हैं। गरम देष में पृथ्वी का स्पर्ष बुरा नहीं लगता। इसीलिए यहाँ जूतों का इतना मान नहीं है, जितना कि विलायत में। यहाँ हाथ से खाने का चलन इसलिए हुआ, क्योंकि यहाँ पर हर समय हाथ धोये जा सकते हैं। अन्न को भी देवता माना जाता है, उससे सीधा संपर्क अधिक सुखद और स्वाभाविक समझा जाता है। यहाँ नहाने के लिए जल की कमी नहीं और नहाने की आवष्यकता भी अधिक होती है, इसलिए नहाना ध र्म का अंग हो गया है।

इस देष में षरीर को अधिक महत्व नहीं दिया जाता है। इसीलिए लम्बे कपड़ों को जो षरीर को उभार में न लावें और उसे पूर्णतया ढक लें अधिक महत्व दिया जाता है। बेसिले कपड़े जैसे धोती आदि नित्य सहज में धोये जा सकते हैं। उनकी सीवन में भी किसी प्रकार का मैल नहीं रह सकता है, इसीलिए वे अधिक पवित्र माने जाते हैं। हमारे यहाँ नगे सर की अपेक्षा सर ढकना अधिक सांस्कृतिक समझा जाता है। ऐसा सभी पूर्वी देषों में है। यहूदियों के प्रार्थना–भवनों में नंगे सर नहीं बैठते। बाल भी षरीर के अंग होने के कारण ढके जाने की अपेक्षा रखते हैं।

इसी प्रकार देष के वातावरण और रुचि के अनुकूल मांगल्य वस्तुओं का विधान किया जाता है। फूलों में हमारे यहाँ कमल को सबसे अधिक महत्व दिया जाता है। इसका सम्बन्ध जल और सूर्य दोनों से है। वह जल में रहता है और सूर्य को देखकर प्रसन्न होता है। जल और सूर्य देष की महती आवष्यकताओं में से हैं। इसका दोनों से सम्बन्ध है। कमल ही सब प्रकार के षारीरिक सौंदर्य का उपमान बनता है। चरण–कमल, नेत्र–कमल, मुख कमल आदि कमल की महत्ता के द्योतक हैं। 'नवकंजलोचन कंजमुख करकंज पदकंजारुणम्' इस छंद में सभी अंग कमल बन गये हैं।

आम्र, कदली, दूर्वादल, नारियल, श्रीफल आदि को मांगल्य कार्यों में प्रमुख स्थान दिया जाता है। आम यहाँ का विषेश मेवा है। इसमें रस भरा रहता है और इसका बौर बसंत का अग्रदूत है। हमारे यहाँ अष्वत्थ को भी विषेश महत्ता दी गई है। श्रीमद् भगवद्गीता में भगवान की विभूतियों में अष्वत्थ को भी विषेश महत्ता दी गई है, वे सब श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान की विभूतियों के रूप में आ गई है – ' अष्वत्थः सर्ववरक्षाणं'। भगवान बुद्ध को भी अष्वत्थ के नीचे ही बुद्धत्व प्राप्त हुआ था। स्थावर वस्तुओं में हिमालय को, सरिताओं में गंगा को, पक्षियों में गरुण को,

ऋतुओं में वसंत ऋतु को महत्ता दी गई है। यह भी हमारी जातीय मनोवत्ति का परिचायक है।

यह तो रहे संस्कृति के बाह्य अंग। संस्कृति के आंतरिक अंगों पर भारत में विषेश बल दिया गया है। धर्म—ग्रन्थों में अच्छे मनुश्यों के जो लक्षण बतलाए गये हैय मनुस्मषति में जो धरति, क्षमा, दम, अस्तेय, षौच, इन्द्रिय—निग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध धर्म के दस लक्षण बतलाये गये, वे सब भारतीयों की मानसिक और आध्यात्मिक संस्कृति के अंग हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में दिये हुए दैवी संपदावालों के लक्षण हैं, जिनमें अभय को सबसे पहला स्थान दिया गया है। स्थितप्रज्ञ के लक्षण (दूसरा अध्याय), सात्विक चीजों के लक्षण (सत्रहवां अध्याय) आदि सब भारतीय संस्कृति के अनुकूल, सभ्य और षिश्ट पुरुश के लक्षण हैं। इससे सभी महाकाव्य ऐसे लक्षणों से भरे पड़े हैं। 'रघुवंष' में रघुकुल के राजाओं के जो गुण बतलाये गये हैं, वे न केवल भारत के सांस्कृतिक आदर्शों के परिचायक हैं, बल्कि उनके अतीत का भव्य चित्र हमारे सन्मुख आ जाता है। दूसरों को दान देने के लिए जो सम्पन्न बनते थे (उनका धन दानाय था), सत्य के लिए मितभाशी बने हुए थे (मिथ्याभिमान के कारण वे कम बातचीत नहीं करते थे), जो यष के लिए विजय प्राप्त करते थे (धन, राज्य छीनने के लिए नहीं), यष को अपने यहाँ अधिक महत्व दिया गया है। हमारे पूर्वज यष के लिए संसार की समस्त सम्पदा और वैभव त्यागने को सदैव तत्पर रहते थे।

अर्जुन से भी श्रीकृश्ण ने अन्तिम अपील यही की थी 'यषो लभस्व । संतान के लिए (कामोपभोग के लिए नहीं, वरन् पितर ऋण चुकाने और समाज को अच्छे नागरिक देने के अर्थ), जो गरहस्थ बनते थे, बाल्यावस्था में जो विद्याध्यन करते थे, यौवन में विशय भोग करने वाले, वष्द्धावस्था में मुनिवरक्ति को धारण करने वाले और योग द्वारा षरीर को त्यागने वाले (आजकल तो 'रोगेणान्ते तनुत्यजाम्' की बात हो गई है) ऐसे रघुवंषियों ऐसे रघुवंषियों के कुल का मैं (कालिदास) वर्णन करता हूँ। यद्यपि मेरे पास वाणी का वैभव अधिक नहीं है। इससे पता चलता है कि प्राचीन भारत में त्याग, सत्य, यष, आश्रम—विभाग और सामाजिक कल्याण की ओर अधिक ध्यान दिया जाता था। संक्षेप में भारतीय संस्कृति के मुख्य—अंग इस प्रकार बतलाए जा सकते हैं

(1) आध्यात्मिकता इसके अन्तर्गत नष्वर षरीर का तिरस्कार, परलोक और सत्य, अहिंसा, तप आदि आध्यात्मिक मूल्यों को अधिक महत्व देना, आवागमन की भावना, ईष्वरीय न्याय में विष्वास आदि बातें हैं हमारे यहाँ की संस्कृति तपोवन—संस्कृ ति रही है, जिसमें विस्तार ही विस्तार था— 'प्रथम साम—रव तव तपोवने प्रथम प्रभात तब गगने। विस्तार के वातावरण में आत्मा का संकुचित रूप नहीं रह सकता था। इसी के अनुकूल आत्मा का सर्वव्यापक— विस्तार माना गया है।

इसीलिए हमारे यहाँ सर्वभूतहित पर अधिक महत्व दिया गया है– 'आत्मवत् सर्वभूतेशु यः पष्यति स पष्यतिः ।

इकाई– 7 डॉ. पदमसिंह शर्मा 'कमलेश' (सन् 1915–1974 ई.) हरिशंकर कोरी और कुजर में एक ही आत्मा का विस्तार देखा जाता है। इसीसे गाँधी जी की सर्वादय की भावना को बल मिला। हमारे यहाँ के मनीशी 'सर्व सुखिनः भवन्तु, सर्वे सन्तु निरामयाः' का पाठ पढ़ते थे।

नष्वर षरीर के तिरस्कार की भावना हमारे यहाँ के लोगों को बड़े–बड़े बलिदानों के लिए तैयार कर सकी। षिवि, दधीचि, मोरध्वज इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। महाराजा दिलीप ने गुरु की प्रसन्नता के लिए नन्दिनी नाम की गौ को चराने का व्रत धारण किया था। उसकी सिंह से रक्षा करने के लिए वे अपने प्राणों का भी उत्सर्ग करने के लिए तैयार हो जाते हैं। वे सिंह से कहते हैं कि यदि तुम मुझ पर दया ही करना चाहते हो तो मेरे यष–षरीर पर दया करो। पंचभूतों से बने हुए नाषवान षरीर के पिण्डों पर मुझ जैसे लोगों की आस्था नहीं होती।

हमारे यहाँ का मार्ग साधना का मार्ग रहा है और तप, त्याग और संयम को महत्ता दी गई है। क्या बौद्ध, क्या जैन और क्या वैशणव सभी लोग इन गुणों की सराहना करते हैं।

हमारे यहाँ की आध्यात्मिकता मन और बुद्धि से परे जाती है। वह आत्मा का साक्षात अनुभव करना चाहती है। यही भारतीय और पाष्चात्य दर्षनों का अन्तर है। हमारे दर्षन का अर्थ आत्मा का दर्षन ही है, पाष्चात्य देषों में वह बुद्धि–विलास के रूप में रहा है।

(2) समन्वय–बुद्धि आत्मा की एकता के आधार पर हमारे यहाँ अनेकता में एकता देखी गई है।

इसी से मिलती–जुलती समन्वय–भावना है। हमारे विचारकों ने सभी वस्तुओं में सत्य के दर्षन किये हैं। उनका धर्म अविरोधी धर्म रहा है।

इसीलिए हमारे यहाँ धर्म परिवर्तन को विषेश महत्व नहीं दिया गया है। फिर भी संस्कृतियों का आदान–प्रदान हुआ है। तुलसीदास जी जैसे महात्मा ने, जो भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि कहे जा सकते हैं, समन्वय–बुद्धि से ही काम लिया था। उन्होंने षैव और वैशणवों का ज्ञान और भक्ति तथा अद्वैत और विषिश्टाद्वैत का समन्वय किया था। आधुनिक कवियों में प्रसाद जी ने भी अपनी 'कामायनी' में ज्ञान, इच्छा और क्रिया का समन्वय किया है। मानव–कल्याण में ज्ञान, इच्छा, क्रिया का पार्थक्य ही बाधक होता है।

(3) वर्णाश्रम–विभाग

ज्ञान दूर कुछ, क्रिया भिन्न है,

इच्छा क्यों पूरी हो मन की,

एक दूसरे से न मिल सके,
यह विडंबना है जीवन की।

हमारी संस्कृति में कार्य विभाजन को बड़ा महत्व दिया गया समाज को भी चार भागों में बाँटा है और मा व जीवन को भी। सामाजिक विभाजन बढ़ते–बढ़ते संकुचित और अपरिवर्तनीय बन गया। अपरिवर्तनीय बनने में भी इतनी हानि न थी, यदि सबका महत्व सिद्धान्त और व्यवहार दोनों में एक सा मान लिया गया होता। कुछ लोगों ने श्रेश्ठता का एकाधिकार कर लिया और 'पण्डितः समदर्षिनः ' की बात भूल गये। हमारे सभी प्रचारकों और सुधारकों ने इसके विरुद्ध आवाज उठाई और उन सब में जोरदार आवाज रही भगवान् गौतम बुद्ध, संत कबीर और महात्मा गाँधी की। पुरुश सूक्त ने तो चारों वर्णों को एक ही विराट् षरीर का अंग माना था – 'ब्रह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः । षूद्र भगवान के चरणों से निकले। इसी आधार पर कविवर मैथिली षरण जी गुप्त ने उन्हें सुरसरि का सहोदर कहा है। एक ही षरीर के विभिन्न अंगों में कोई ऊँचा– नीचा नहीं होता। सामाजिक संगठन का हमारे यहाँ बहुत ऊँचा आदर्ष रखा गया था । वैदिक ऋशियों की तो यही भावना थी, लेकिन हम उसको भुला बैठे।

(4) अहिंसा, करुणा, मैत्री और विनय, इन चार गुणों को इसलिए ही रखा गया है कि इनके मूल में अहिंसा की भावना है और करुणा, मैत्री तथा विनय अहिंसा व्रत के पालन में सहायक होते हैं। हिंसा केवल वध करने में ही नहीं होती, वरन् किसी का उचित भाग ले लेने और दूसरे का जी दुखाने में भी। इसलिए हमारे यहाँ 'सत्य ब्रूयात' के साथ 'प्रियं ब्रूयात' का पाठ पढाया गया है। करुणा प्रायः छोटों के प्रति होती है। मैत्री बराबर वालों के प्रति और विनय बड़ों के प्रति, किन्तु हमको सभी के प्रति षिश्टता का व्यवहार करना चाहिये। विनय षील का एक अंग है, जिसको बडा आवष्यक माना गया है। भगवान कृश्ण ने ब्राह्मण के विषेशणों में विद्या के साथ विनय भी लगाया– 'विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे । विनय भारतीय संस्कृति की एक विषेशता है । असांस्कृतिक लोग ही उद्धत होते हैं। (5) प्रकृति–प्रेम– भारतवर्श पर प्रकृति की विषेश वरूपा रही है। यहाँ सभी ऋतुएँ अपने समय पर आती हैं और पर्याप्त काल तक ठहरती हैं। ऋतुएँ अपने अनुकूल फल–फूलों का सष्जन करती है। धूप और वर्शा के समान अधिकार के कारण यह भूमि षस्य – ष्यामला हो जाती है। यहाँ का नगाधिराज हिमालय कवियों को सदा से प्रेरणा देता आ रहा है और यहाँ कि नदियाँ मोक्षदायनी समझी जाती रही हैं। यहाँ कृत्रिम धूप और रोषनी की आवष्यकता नहीं पड़ती। भारतीय मनीशी जंगल में रहना पसन्द करते थे। प्रकृति–प्रेम के ही कारण यहाँ के लोग पत्तों में खाना पसन्द करते हैं। वक्षों में पानी देना एक धार्मिक कार्य समझते हैं। सूर्य और

चन्द्र दर्षन दर्षन नित्य और निमित्तिक कार्यों में षुभ माना जाता है। यहाँ के पषु–पक्षी, लता–गुल्म और वक्ष तपोवनों के जीवन का एक अंग बन गये थे, तभी तो षकुन्तला के पतिगरह जाते समय उसके जाने की उन सबों से आज्ञा चाहते हैं

पीछे पीवत नीर जो पहले तुमको व्याया फूल–पात तोरति नहीं गहने हू के चाय।।
जब तुम फूलन के दिवस आवत है सुखदान।
फली अंग समात नहि उत्सव करत महान्
सो यह जाति षकुन्तला आज पिया के गेहा
आज्ञा देहु प्यान की तुम सब सहित सनेह

हमारी संस्कृति इतने में ही संकुचित नहीं है। पारिवारिकता पर हमारी संस्कृति में विषेश बल दिया गया है। भारतीय संस्कृति में षोक की अपेक्षा आनन्द को अधिक महत्व दिया गया है। इसीलिए हमारे यहाँ षोकांत नाटकों का निशेध है। भारत में आतिथ्य को विषेश महत्व प्रदान किया गया है। अतिथि को भी देवता माना गया है– 'अतिथिदेवो भव' ।

हमारी संस्कृति के मूल अंगों पर प्रकाष डाला जा चुका है। भारत में विभिन्न जातियों के पारस्परिक संपर्क में आने से संस्कृति का समन्वय बहुत उत्तम रीति से हो गया था। इस समय मुस्लिम और अंग्रेजी संस्कृतियों का और मेल हुआ है। हम इन संस्कृतियों से अछूते नहीं रह सकते हैं। इन संस्कृतियों में से हम कितना ले और कितना छोड़ें, यह हमारे सामने बड़ी समस्या है। अपनी भारतीय संस्कृति को तिलांजलि दे इनको अपनाना आत्महत्या होगी। भारतीय संस्कृति की समन्वयषीलता यहाँ भी अपेक्षित है, किन्तु समन्वय में अपना न खो बैठना चाहिए। दूसरी संस्कृतियों के जो अंग हमारी संस्कृति में अविरोध रूप से अपनाये जा सके, उनके द्वारा अपनी संस्कृति को सम्पन्न बनाना आपत्तिजनक नहीं। अपनी संस्कृति चाहे अच्छी हो या बुरी, चाहे दूसरों की संस्कृति से मेल खती हो या न खाती हो, उससे लज्जित होने की कोई बात नहीं। दूसरों की संस्कृतियों में सब बातें बुरी ही नहीं हैं। हमारी संस्कृति में धार्मिक कृत्यों में एकान्त–साधना पर अधिक बल दिया गया है, यद्यपि सामूहिक प्रार्थना का अभाव नहीं है। मुसलमानी और अंग्रेजी सभ्यता में सामूहिक प्रार्थना को अधिक आश्रय दिया गया, यद्यपि एकान्त–साधना का वहाँ पर भी अभाव नहीं। हमारे कीर्तन आदि तथा महात्मा गाँधी द्वारा परिचालित प्रार्थना–सभाएँ धर्म में एकत्व की सामाजिक भावना को उत्पन्न करती आई है। हमारे यहाँ सामाजिकता की अपेक्षा पारिवारिकता को महत्व दिया गया है। पारिवारिकता को खोकर सामाजिकता को ग्रहण करना तो मूर्खता होगी, किन्तु पारिवारिकता के साथ–साथ सामाजिकता बढ़ाना श्रेयस्कर होगा। भाशा

और पोषाक में अपनत्व खोना जातीय व्यक्तित्व को तिलांजलि देना होगा। हमें अपनी सम्मिलित परिवार की प्रथा को इतना न बढ़ा देना चाहिए कि व्यक्ति का व्यक्तित्व ही न रह जाये और न व्यक्तित्व को इतना महत्व देना चाहिए कि गुरुजनों का आदभाव भी न रहे और पारिवारिक एकता पर कुठाराघात हो। कपड़े और जूतों की सभ्यता कम–से–कम कपड़ा पहनना और नंगे पैर रहने की सभ्यता में भी समन्वय की आवष्यकता है। अंग्रेजी सभ्यता में जूतों का विषेश महत्व है, किन्तु उसे अपने यहाँ के चौका और पूजागरहों की सीमा पर आक्रमण न करना चाहिए। अंग्रेजी सभ्यता चीनी और काँच के बर्तनों की सभ्यता है। हमारी सभ्यता मिट्टी और पीतल के बर्तनों की है। हमारी सभ्यता स्वस्थ्य विज्ञान के नियमों के अनुकूल है।

यदि हम कुल्हड़ों के कूड़े का अच्छा बदोबस्त कर सकें तो उससे अच्छी कोई चीज नहीं है। आलस्य को वैज्ञानिकता पर विजय न पाना चाहिए। अंग्रेजी संस्कृति से भी सफाई और समय की पाबन्दी की बहुत–सी बातें सीखी जा सकती हैं, किन्तु अपनी संस्कृति के मूल अंगों पर ध्यान रखते हुए समन्वय बुद्धि से काम लेना चाहिए। समन्वय द्वारा ही संस्कृति क्रमाः उन्नति करती रही है और आज भी हमें उसे समन्वयषील बनाना

जीवेम षरदः षतम्

ख्डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ,

आज आपको 'जीवेम षरदः षतम' अर्थात् हम सौ वर्ष तक जीवत रहें, इस विशय पर अपना विचार सुनाने जा रहा हूँ। आज की इस बातचीत का नाम संस्कृत में दिया गया है। यह इसलिए किया गया है कि हमारे श्रोता कि हमारे श्रोता षुरू में ही समझ लें कि यह प्रार्थना नयी नहीं है, बहुत पुरानी है। नित्य ही धार्मिक हिन्दू अपनी सन्धया पूजा के समय भगवान से प्रार्थना करता है कि वह अदीन होकर सौ वर्ष तक जीता रहे। केवल जीने की प्रार्थना नहीं की गयी है। यदि कर्म करने की षक्ति षिथिल हो गयी हो, विचार–विवेक का सामर्थ्य जाता रहा हो, दूसरों का मोहताज बनकर ही जीवित रहना पड़े तो उस जीवन से क्या लाभ? इसलिए उपनिशद् में स्पश्ट रूप में कहा गया है कि, कर्म करता हुआ ही सौ वर्श तक जीने की इच्छा रखे – कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविशेच्छतं समाः । किसी–किसी टीकाकार ने सौ वर्श का अर्थ कम से कम 125 वर्श किया है, क्योंकि यदि कर्म करते हुए जीवित रहना ही मनुश्य को वांछनीय हो तो उसकी षरीर– यात्रा के लिए कुछ विश्राम का समय अलग से देना चाहिए। यदि प्रतिदिन औसत 6 घण्टे विश्राम के लिए हों तो इस हिसाब से सौ वर्श के कर्ममय जीवन के लिए कम से

कम 25 वर्श विश्राम के अलग से चाहिए। इस प्रकार सौ वर्श के कर्ममय जीवन के लिए कम से कम 125 वर्श की आयु होनी चाहिए।

परन्तु इस प्रकार की व्याख्या मन्त्र के अक्षरार्थ पर बहुत अधिक जोर देने के कारण की गई है। हमें मन्त्र के अन्तर्निहित अर्थ पर अधिक ध्यान देना चाहिए। मध्य युग के अनेक संस्कृत और भाशा कवियों ने अपने जीवन के अधिकांष भाग को नींद में, लड़कपन में, वष्द्धावस्था में और युवावस्था के भोग–विलास में नश्ट होते देख खेद प्रकट किया है। एक सुन्दर उदाहरण विद्यापति के इस भजन में मिलता है.

माधव हम परिनाम निरासा ।

आध जनम हम नींद गमायुन जरा सिसु कत दिन गेला।

निधुवन रहसि युवति परिरंभन तोहे

भजब कौन बेला

प्रपाथव

इस और इसी प्रकार के अन्य भजनों में भगवद्षक्ति को ही मानव जीवन का एकमात्र लक्ष्य माना गया है और उस महान् लक्ष्य से एक क्षण के लिए भी च्युत होने को खेदजनक समझा गया है।

‘लक्ष्य भ्रश्ट जीवन केवल दयनीय ही नहीं होता, वह समाज के लिए हानिकर भी होता है। इसीलिए इस देष के विचारषील लोगों ने केवल सौ वर्श तक जीवन की ही प्रार्थना नहीं की है, उसके साथ यह भी जोड़ दिया है कि उस जीवन के साथ जीवन का लक्ष्य सदा जुड़ा रहे। क्योंकि कर्म करता हुआ ही मनुश्य जीवित रहने की इच्छा करे’ इस वाक्य का अर्थ यह नहीं हो सकता कि जो जी में आये वही कर्म करता हुआ मनुश्य जीवन–यापन करे। यह जीवन मनुश्य के उत्तम लक्ष्यों के अनुकूल होना चाहिए। ऐसा कर्म जो दूसरों के लिए कश्टदायक हो, समाज के यथार्थ मंगल का बाधक और मनुश्यता के प्रतिकूल हो, कवि षास्त्र द्वारा समर्थित नहीं हो सकता। इसलिए कर्म तो ऐसा ही होना जो मनुश्य जीवन के उच्चतर लक्ष्य के अनुकूल हो। साथ ही उसमें दैन्य का भाव नहीं आना चाहिए। दीनता उस मानसिक दुबलता को कहते हैं, जो मनुश्य को दूसरे की दया पर जीने का प्रलोभन देती है। जो मोहताज बनकर किसी की कृपा प्राप्त करने को सुवधाजनक मार्ग समझती है। भारतवर्श के श्रेश्ठ वीर अर्जुन की दो प्रतिज्ञाएं प्रसिद्ध हैं – दैन्य न दिखाना और भागना नहीं। वीरत्व के ये ही दो नाभि केन्द्र हैं अर्जुनस्य प्रतिज्ञेद्वे न दैन्यं न पलायनम्। दैन्य और पलायन मनुश्य के कर्ममय जीवन के विरूद्ध जाते है। वीरत्व पूर्ण मन से, धर्मानुकूल कर्म करते हुए ही मनुश्य को 100 वर्श जीने की इच्छा रखनी चाहिये।

भारतवर्श नित्य ही इस प्रकार प्रार्थना करता आ रहा है। पर उसकी प्रार्थना फलवती नहीं हुयी है। साधारण जनता धर्मानुकूल कर्म करते–करते सौ वर्श जीने अभिलाशा मन में चाहे पोशण करती हो, पर वह न तो दैन्य से मुक्त हो सकी है, न कर्म के प्रति उत्साह ही जिलाए रख सकी है और न सौ या सवा सौ वर्श की औसत आयु ही पा सकी है। कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपनी एक कविता में भारतीय किसान को देखकर कहा है–

"यह जो खड़ा है, सिर झुकाए, मुंह बन्द किए – जिसके म्लान मुख पर सौ–सौ षताब्दियों की वेदना की करुण कहानी लिखी हुयी है, कन्धे पर जितना भी बोझ लाद दो, मन्द गति सेत तक ढोए जाता है, जब तक उसमें प्राण बचे रहते हैं– उसे बाद संतान को दे जाता है वह बोझा पीढ़ियों तक यही क्रम चलता है। अदृश्ट को दोश नहीं देता, देवता को स्मरण करता है, परनिन्दा नहीं करता, किसी मनुश्य को भी दोश नहीं देता, मान–अभिमान करना जानता ही नहीं, सिर्फ अन्न के दो दाने, खोट कर किसी प्रकार अपने कश्ट–क्लिश्ट प्राणों को जिला रखता है। वह अन्न भी जब कोई छीनने लगता है, उस थके–थकाए प्राण को भी जब गर्वान्ध निश्ठुर अत्याचार चोट पहुँचाता है, तो नहीं जानता कि न्याय पाने की आषा से किसके द्वार पर जाये, केवल दरिद्रों के भगवान् को उसाँसे भरकर एक बार पुकारता है और चुपचाप मर जाता है। ''

रवीन्द्रनाथ ने कविजनोचित भाशा में इस अत्यन्त दयनीय अवस्था को मर्मभेदक चित्र खींचा वह सत्य है। क्यों ऐसा हुआ? जिस देष के मनीशियों ने सहस्रों वर्श पूर्व से वीरत्व पूर्ण चित्त से कर्म करते हुए सौ वर्श तक जीवित रहने का पुनीत संकल्प घोशित किया, उनके उत्तराधि कारी आज इस हीन अवस्था को कैसे पहुँच गए? इतना महान् संकल्प और उसकी ऐसी मर्म–विदारक अवस्था– इन दोनों का सामंजस्य कहाँ है?

बात यह है कि केवल प्रार्थना या संकल्प के महानू होने से ही काम नहीं बनता, उस संकल्प के पीछे दृढ कर्म षक्ति चाहिए। यदि हम केवल बड़ी इच्छाएं ही मन में पोशते रहें तो उससे कुछ बड़ी सिद्धि नहीं मिल पाएगी संस्कृत के पुराने सुभाशित में कहा गया है कि सोए सिंह के मुंह में मृग स्वयं नहीं घुस जाया करते, इसके लिए उसे हाथ पैर मारना होता है, घात लगाए रहना पड़ता है, जुगत बांध ानी होती है। सिंह की इच्छा भी बड़ी हो सकती है, उसमें पराक्रम की मात्रा भी बहुत हो सकती है, पर हाथ पैर तो उसे हिलाना ही होगा– न हि सुतस्य सिंहस्य प्रवेषन्ति मुखे मृगा केवल संकल्प से काम नहीं चलता। उस संकल्प के अनुसार प्रयत्न भी चाहिए। दाम सबका चुकाना पड़ता है। बड़ी वस्तु का दाम भी बड़ा होता है। और वीरत्व पूर्ण चित्त से कर्म करते हुये सौ वर्श तक अदीन जीवन निःसंदेह

बहुत बड़ी वस्तु है। उसे पाने के लिए उतना ही महान त्याग और तप आवष्यक है। दुनिया में बड़ी–बड़ी बातों की महिमा किससे छिपी है? कौन नहीं जानता कि तप बड़ी चीज है, बहुत बड़ी वस्तु है, ब्रह्मचर्य अच्छी ंजं है। यह भी नहीं कि लोग यह नहीं चाहते हो कि उनमें से गुण आ जायें। सब चाहते हैं कि लोग उन्हें त्यागी, तपी और विवेकी समझें, पर कोई ऐसी बाधा हमाए रास्ता रोक लेती है कि हम कुछ कर ही नहीं पाते। भागवत में प्रहलाद ने भगवान से कहा था कि हे भगवन मौन, व्रत, षास्त्रज्ञान, अध्ययन, धर्माचरण, पाप, तप, समाधि और मुक्ति – तत्व ये सारी बड़ी बातें उन लोगों के लिए केवल बहस की चीज बन जाती है, जिन्होंने अपनी इन्द्रियों को वष में नहीं कर लिया फिर जो लोग दम्भी हैं, उनके लिए तो ये बहस की भी बात नहीं होती– मानव्रत श्रुततपोऽध्ययनस्वधर्म–व्याख्यारहोजमसमाधाय आपवय। प्रायः परं पुरुश ते त्वजिदेन्द्रियाणां वार्ता भवन्त्युत न वात्र तु दम्भिकानाम् e

यही ठीक है। जो अपने समस्त इन्द्रिय–समूह को वष में नहीं कर लेता, उस असंयमी पुरुश या स्त्री से सब बड़े संकल्प उसी प्रकार व्यर्थ होते हैं, जिस प्रकार फूटे बर्तन में पानी सुरक्षित रखने का प्रयास व्यर्थ हो जाता है। इसलिए किसी भी महान् संकल्प के लिए दृढ़ संयम और निश्ठा सबसे पहली षर्त है। सौ वर्श तक जीवित रहने के महान् संकल्प के लिए दृढ़ संयम और निश्ठा सबसे पहली षर्त है। सौ वर्श तक जीवित रहने के महान् संकल्प के लिए भी दृढ़ संयम आवष्यक

• जितेन्द्रियता चरित्रबल की कुंजी है। वस्तुतः आजकल जिसे चरित्रबल कहा जाने लगा है, उसे ही पुराना भारतवासी जितेन्द्रियता कहता था। अपने आदर्शों के प्रति अविचल निश्ठा इसी गुण से आती है। महाभारत में कहा है कि कामवष, भयवष, लोभवष, यहाँ तक कि प्राण के लिए भी धर्म नहीं छोड़ना चाहिए

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्

धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः ।

यह अविचल निश्ठा तभी सम्भव है, जब मनुश्य की अपनी इन्द्रियाँ अपने वष में हों। यह गुण अभ्यास से प्राप्त होता है। दुर्भाग्यवष हमारे देष के षिक्षितों में भी इस गुण का अभाव ही बढ़ता जा रहा है। जितना भ्रश्टाचार इस समय देष में फैला हुआ हैय उतना षायद ही कभी रहा हो। प्रहलाद ने जो कहा था कि अजितेन्द्रिय पुरुशों के लिए सब बड़ी–बड़ी बातें केवल बहस की बातें रह जाती हैं, उसका प्रत्यक्ष उदाहरण हमारा षिक्षित वर्ग है। आप घंटों सत्य और अहिंसा पर, धर्म और संस्कृति पर नित्य व्याख्यान सुन सकते हैं, समाचारपत्रों में साहस और निश्ठा पर लेख पढ़ सकते हैं, पर 'कार्यकाले समुत्पन्ने न सा विद्या ना सा मतिः।' हमारे देष की सामूहिक समस्या इस समय चरित्रगत कमजोरी है। नीचे से

ऊपर तक लोभ और भय का वीभत्स नृत्य देखकर हृदय काँप उठता है। चरित्रबल न रहे तो आदमी अपने संकल्प का अर्थ भी नहीं समझना चाहता। जो व्यक्ति यह प्रार्थना करेगा कि मैं दैन्यहीन होकर सौ वर्श जीवन व्यतीत करूँ उसमें निःसंदेह स्वाभिमान की मात्रा बहुत अधिक होगी। अब कोई स्वाभिमानी आदमी जो स्वयं दीनता–प्रकाषन को मनुश्य जीवन का अभिषाप समझता हो, दूसरे को दीन बना कैसे सकता है। यदि हम षुभ चित्त से अपनी इसी महती प्रार्थना के मर्मार्थ पर विचार करें तो स्पश्ट हो जाएगा कि जिस ऋशि ने इस महान् संकल्प को नित्य दुहराने की व्यवस्था की थी उसने यह भी सोचा था कि जो लोग ऐसी प्रार्थना करेंगे, वे दूसरे को दीन नहीं बनाएंगे। षोशण और परपीड़न के पाप की ओर उनकी दृश्टि नहीं जाएगी।

पर हुआ उलटा। लोग प्रार्थना भी करते रहे, और षोशण और परपीड़न का चक्कर भी चलता रहा। प्रार्थना अपने रास्ते चलती गई और दुनिया का व्यवहार अपने रास्ते चलता गया। अन्तर बढ़ता गया, बढ़ता गया, बढ़ता गया। और अब यह अवस्था हो गई कि हमारे इस मौखिक संकल्प का कोई मूल्य ही नहीं रहा। हमारे देष की औसत आयु घटते घटते अब बीस वर्श के आसपास रह गई है। विचार करने पर मन क्षोभ से भर जाता है। इतने बड़े संकल्प की

क्या यही गति होनी चाहिए थी? पर क्षोभ चाहे जितना हो, वस्तुस्थिति यही है बड़ी–बड़ी बातों के घोखने से हम अपने दोशों को नहीं ढँक सकते। हमें सचाई अनावष्त सचाई का साहसपूर्वक सामना करना चाहिए। जिस प्रकार भी हो हमें अपने नैतिक धरातल को ऊपर उठाना ही पड़ेगा। भारतवर्श को अगर सम्मानपूर्वक जीवित रहना है तो उसे अपने काले धब्बे को धो देना पड़ेगा। गाल के जोर ने दीवाल नहीं ढहती, निहुरे–निहुरे ऊँट नहीं चुराया जाता ! चारों ओर भीतर और बाहर के षत्रु हमारी और आँख लगाए हुए हैं, दूसरे निष्चिन्त होना चाहें तो हो लें, हम निष्चिन्त नहीं सो कते–

"जा का घर है मैल में सो कत सोय निष्चिन्ता"

यहाँ मैं अपनी बात जरा और भी स्पश्ट रूप में ही आपके सामने रखना चाहता हूँ। मैं जितनी दूर तक अपने देष का इतिहास समझ सका हूँ, मुझे ऐसा लगा है कि अनेक बड़े–बड़े आध्यात्मिक साधक, सम्प्रदाय और धार्मिक आन्दोलन महान् आदर्षों को लेकर चले है, पर देर तक वे षुद्ध अनाविल रूप में नहीं रह सके हैं। घर जोड़ने की माया ने सबको अभिभूत कर लिया है। जिन लोगों ने षोशण और परपीड़न का विरोध किया था, उन्हीं के नाम पर स्थापित यद्दियों की ओर से षोशण का कारोबार तेजी से चल पड़ा है। व्यक्तियों की बातें मैं नहीं कहता। हमारे देष में ऐसे–ऐसे दृढ़ निष्चयी और त्यागी वीर हुए हैं कि जिनके नाम लेने से भी

हृदय और मन पवित्र हो जाता है। वे कामक्रोधादि से विचलित नहीं हुए हैं, यह सत्य है, पर जब उनका संदेष समूह का सेवनीय बना है, तभी जड़ भार संग्रह करने की प्रवृत्ति बढ़ती गई है, माया जोड़ने का नषा उन्हें अभिभूत कर गया है। और देष क्रमाः चरित्र बल से हीन होता गया है।

इस यन्त्र युग में समूह की षक्ति बढ़ी है। हमें कोई ऐसी व्यवस्था सोचनी पडेगी कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जरूरत भर अन्न, वस्त्र और षिक्षा मिल जाय और उसे जितने की जरूरत है, उससे अधिक संग्रह करने का अवसर ही नहीं मिले। जब सामूहिक रूप से ऐसी कोई. व्यवस्था हो जाएगी, तभी ये छोटी चीजें बड़ी–बड़ी बातों से मनुश्य का ध्यान हटाकर अपनी ओर खींच नहीं सकेंगी। हमें उन बातों को समाज में ठहरने ही नहीं देना चाहिए, जो औसत व्यक्ति की चरित्र षक्ति को हीन और दुर्बल बनाता है। अब हमारी साधना केवल व्यक्तिगत उपदेष तक सीमित नहीं रहनी चाहिए, हमें सामूहिक रूप से ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि मनुश्य को लोभ–मोह की ओर खींचने वाली षक्तियाँ क्षीण–बल हो जाएँ। कहने का मतलब यह है कि इन दिनों केवल व्यक्ति को लोभ–मोह से विरत होने का उपदेष ही काफी नहीं है, लोभ–मोह को प्रश्रय देने वाली षक्तियों को ही निःषक्त कर देने की आवष्यकता है। आज जब हम सामूहिक षिक्षा, सामूहिक सुरक्षा आदि की ओर अग्रसर होने को बाध्य हो गये हैं, तो हमें सामूहिक रूप से जनता के चरित्रबल को सुरक्षित करने की व्यवस्था भी प्रयत्नपूर्वक करनी होगी। जब हमारी सम्पूर्ण जनता साहसपूर्वक धर्मानुकूल कर्म करती हुई सौ वर्श का जीवन पाने की इच्छा करेगी और उसके चरित्रबल को दुर्बल बनाने वाली सामाजिक षक्तियाँ क्षीण हो जाएँगी, तब हमारा नैतिक धरातल ऊँचा होगा। तभी समग्र देष का मंगल होगा और हमारे देषवासी केवल कर्ममय जीवन ही नहीं यापन करेंगे, वे सारे जगत् को इस प्रकार के जीवन की ओर उद्बुद्ध करेंगे। तभी वैदिक ऋशि की सिखाई हुई यह प्रार्थना फलवती होगी पष्येम षरदः षतं जीवेम षरदः षतम् षृणुयाम षरदः षतं प्रजा षरदः ज्तममजमतः

स्याम षरदः षतं पुच षरदः षतात

लेखक और जनता

ख डॉ० रामविलास षर्मा ,

कुछ दिन पहले जैसे हिन्दुस्तान के विद्यार्थियों में यह एक बहस की बात थी कि राजनीति में हिस्सा लें या न लें वैसे ही अभी तक कुछ हिन्दी लेखकों में इस बात की चर्चा चलती रहती है कि जनता से भी उनका सम्बन्ध होना चाहिए या नहीं। जनता से सम्बन्ध होने का बहुत सीध अर्थ वह यह लगाते हैं कि साहित्य पर राजनीति का प्रभाव पडने लगेगा। लेखक और जनता का सम्बन्ध राजनीति का

ही नहीं है परन्तु उस सम्बन्ध में राजनीति का बहुत बड़ा अंष इससे इनकार नहीं किया जा सकता। इसीलिए प्रगतिषील साहित्य पर अक्सर यह अभियोग लगाया जाता है कि उसने साहित्य को राजनीति की पोथी बना दिया है।

एक पराधीन देष की जनता अपने जीवन की हर घड़ी और क्षण में अपनी राजनीतिक स्वाध धीनता के अभाव को महसूस करती है। राजनीति का प्रष्न उसके जीवन की तमाम समस्याओं में घुल–मिल जाता है। साम्राज्यवाद एक आर्थिक और राजनीतिक षक्ति है। देष में अपने पैर जमाये रखने के लिए उसने फौज, पुलिस, कचहरी, षिक्षालय, जमींदार, मुनाफाखोर आदि–आदि वर्गों और संस्थाओं द्वारा तमाम समाज को जकड़ रक्खा था। समाज की काया साँस लेते ही इस लोहे के साँचे की सख्ती का अनुभव करती है। पग–पग पर इसकी कठोरता का परिचय मिलता रहता है। उस मनुश्य को हृदयहीन समझना चाहिये जो इस पराधीनता को अनुभव न कर सके। कवि या साहित्यकार समाज का सबसे भावुक, विचारषील और सहदय प्राणी होता है। दूसरे लोग पराधीनता के ताप को सहते–सहते भले ही उसके आदी हो जाएँ लेकिन कवि का सुकोमल हृदय तो उसके सम्पर्क से झुलस जाता है। वह अपने साहित्य में इस प्रतिक्रिया को व्यक्त किये बिना कैसे रह सकता है? लेखक और जनता या लेखक और राजनीति की समस्या स्पश्ट रूप से यही है।

जीवन की पूर्णता को चाहने वाला, अपने साहित्य को समाज का दर्पण बनाने वाला कवि और कलाकार समाज की सबसे कठोर वास्तविकता, राजनीतिक पराध ीनता, के प्रति उदासीन नहीं रह सकता। लोग मानते हैं कि साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब है, लेकिन कुछ सज्जन इस प्रतिबिम्ब में अपनी रसिक आकृति के सिवा और कुछ नहीं देखना चाहते। साधारण जनता की नयी राजनीतिक चेतना का प्रतिबिम्ब जहाँ साहित्य में दिखायी दिया कि उन्होंने कहना षुरू किया कि दर्पण ही फूट गया। यह सही है कि रसिक जनों की आकृति जितनी सुन्दर होती है, उतनी मिल में काम करने वाले मजदूरों या हल जोतने वाले खेतिहर किसानों की नहींय लेकिन यदि रसिकगण दर्पण में अपना ही प्रतिबिम्ब देखना चाहते हैं तो उन्हें साहित्य की परिभाशा बदल देनी चाहिये। तब कहना चाहिये कि साहित्य वह दर्पण है जिसमें समाज के उन विषेश लोगों की ही षक्ल दिखाई देती है जो दुपल्ली टोपी लगाये, पान खाये सुरमा रचाये इस दुनिया से दूर नायिका–भेद के संसार में विचरण करते है। इन साहित्य–मर्मज्ञों के हृदय इतने "सहृदय" हो गये हैं कि जिस बात से चालीस करोड़ जनता के हृदय को ठेस लगती है, वह उनके मर्म को छू भी नहीं पाती। इनका कुसुम–कोमल हृदय नकली गर्मी से उगने वाले

पौधों की तरह एक कृत्रिम साहित्य की उत्तेजना पाकर ही विकसित होता है। ये लोग कहें तो ठीक ही होगा कि लेखकों को जनता से दूर रहना चाहिये। दिन–प्रतिदिन संसार के इन विचित्र प्राणियों की संख्या कम होती जा रही है। लेखकों में बहुतायत उन लोगों की है जो अपने को समाज की गतिविधि से बंध हुआ पाते हैं।

इकाई– 8 गुलाबराय, शिरीष के फूल (ललित निबन्ध)

समाज की हर धड़कन का असर उनकी लेखनी पर पड़ता है।यह असर एक यांत्रिक रूप से नहीं पडता, ऐसा नहीं होता कि समाज के रथ मेंलेखक पीछे बंध ाा हुआ हो और उसके पीछे–पीछे लीक पर घिसटता हुआ चलताहो। लेखक सारथी होता है जो लीक देखता हुआ साहित्य की बागडोर संभालेहुए उसे उचित मार्ग पर ले चलता है। प्रतिकूल भूमि पर भी वह नयी लीक बनाताहै। यह सिद्ध करता है कि "महाजनों येन गतः सः पंथा–'' लेकिन इसे सिद्ध करनेके लिए वह रथ छोड़कर नहीं भाग जाता। उच्छष्खल कलाकारों की तरह यहसारथी समाज से दूर खड़े होकर रथ से अपने पीछे आने का संकेत नहीं करता।

'वज्रादपि कठोराणि मष्दुनि कुसुमादपि यह उक्ति साहित्यकार पर भी लागू होती है। राजनीतिक पराधीनता के ताप से उसका कुसुम कोमल ह्रदय झुलसता है और समाज के आकाष में वज्र–गर्जन करने वाले बादल लाने की क्षमता भी उसमें होती है। वह लेखक पलायनवादी और निराष होता है जो इस आंच से सहम कर कल्पना के नंदन बन में भाग जाता है यह निराषा के बियाबान में आठ–आठ आंसू बहाता रह जाता है। सामाजिक परिस्थितियाँ उसे जांचती है। कि ह्रदय कुसुम के समान कोमल होने के साथ–साथ वज्र की तरह कठोर भी है या नहीं। इस परीक्षा में सफल होना लेखक के जीवन–मरण का प्रष्न है। उसका साहित्य अमर होता है या क्षणिक, यह उसके नैतिक बल पर भी निर्भर है। जिसका मनोबल क्षीण हो गया है, जो जीवन–संग्राम को पीठ दिखाता है, जिसके कंठ से षत्रु के लिए ललकार फूटने के बदले अर्त्तनाद सुनायी देता है, वह अमर पद का दावेदार कैसे हो सकता है? अपने सामाजिक उत्तरदायित्व से बचना वास्तव में एक प्रकार की कायरता है। लेखक इस उत्तरदायित्व को निबाहता है या नहीं, यह साहित्यिक प्रष्न ही नहीं लेखक के लिए उसकी नैतिकता का प्रष्न भी है। फरहाद ने कोह काटकर नहर निकाली थी। साहित्य की अमर सरिता भी आर्थिक और राजनीतिक उत्पीड़न के महापर्वत को काटकर प्रवाहित की जाती है। अपनी कुदाल फेंककर इस पर्वत की एक चट्टान के नीचे बैठा हुआ साहित्यकार कल्पना की आकाष गंगा से धरती के ह्रदय को सरस नहीं बना सकता।

संघर्श करना पड़ा है। जितना ज्यादा साधारण जनता परधीनता–पाष में बंधी रही है, उतने ही ज्यादा बंधन लेखक पर भी लगे रहे. हैं। जैसे–जैसे सामाजिक विकास क्रम में संगठित होती हुयी जनता आर्थिक और राजनीतिक स्वाधीनता की ओर अग्रसर होती गयी है, वैसे–वैसे कवि को भी साहित्य रचने की स्वाधीनता पहले से अधिक मिलती गयी है। इसीलिए अपनी स्वाधीनता का हामी लेखक, समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व को भी पहचानता है, क्योंकि वह जानता है कि समाज के संघर्श से ही उसे यह स्वाधीनता मिली है और वह साधारण जनता की स्वधीनता का एक अंग है

एक युग वह भी था जब सारथी बनने के बदले अनिवार्य रूप से लेखक रथ के पीछे बांध दिया जाता था। सामन्ती बंधनों में जकड़ा हुआ कवि अपने आश्रयदाता का गुणगान करता था। उसके लिखने के अधिकार को एक छोटे से सामन्ती वष्च में सीमित कर दिया जाता था। उसी के भीतर रहकर वह उपमा, रूपक और अनुप्रासों की छटा दिखाता था। घोड़ों और व्यजनों के नाम गिनाने में वह अपनी कल्पना का प्रसार देखता था। षूरता और सौन्दर्य के अतिरंजित वर्णन में वह यथार्थ की भूमि से उड़ता हुआ आकाष से जा लगता था। वरत की सीमाओं को तोड़ा हमारे संत कवियों ने वे सुन्दर पाग कर जागीरदारों के दरबारों में नहीं बैठे। उन्होंने साहित्यकार की सीमाओं को देखा, लेकिन उन्हें स्वीकार नहीं किया। वे समाज छोडकर निर्जन वन में कुटी बनाकर योग साधनें पर भी नहीं तुल गये। 'ऊधो, जोग जोग हम नाहीं'– सूरदास ने गोपियों के मुँह से मानों अपनी ही बात कही थी। संसार छोडकर योग साधने वालों पर इन कवियों नें व्यंग्य और कटाक्षों की झड़ी लगायी है। चाहे निर्गुनिये संत हों, चाहे सगुणवादी उपासक हों, ये लोग समाज में रहकर और समाज में भी सबसे निम्न वर्गों में घुल–मिलकर उन्हें प्रेम और एकता की बानी सुनातें रहे थे।

संत कवि पलायन वादी नहीं थे। मध्यकालीन साहित्य के वे एकमात्र क्रान्तिकारी कवि थे। सामन्ती जड़ता, जातीय विद्वेश और साम्प्रदायिक वरणा के विपरीत उन्होंनें मानवता की भावना को उभारा। जो मनुश्यता गिर रही थी, उसे उन्होंने ऊपर उठाया। उनके साहित्य को पढ़कर निराषा, पराजय और दीनता के भाव नहीं उत्पन्न होते, बल्कि आत्मविष्वास और आत्मसम्मान की भावना ही पुश्ट होती है। निस्संदेह उनके साहित्य में भी असंगतियाँ थी। अन्धविष्वास और निराषा की झलक उनके गीतों में मिलती है, परन्तु यह उनके गीत का मूल स्वर नहीं है। इस स्वर से उनके राग–विषेश का रूप स्थिर नहीं होता। कुल मिलाकर हम उन्हें जनता का कवि कह सकते हैं और इसका बड़ा प्रमाण यह है कि जनता के कंठ में अब भी उनकी वाणी गूंज रही है। जो लोग अपने को बहुत आधानिक और

विचारषील मानते हैं, जो समझते हैं कि पुराने अन्धविष्वासों से उनकी चेतना एकदम मुक्त हो गई है, वे इस बात पर भी विचार करें कि उनकी वाणी संत कवियों की बानी की तरह जनता के कण्ठ में क्यों नहीं उतर पाई। साहित्य को जनता तक पहुँचाने के साधन पहले से कहीं ज्यादा हमारे पास हैंय फिर भी हम उनसे पूरा लाभ नहीं उठा पाते तो इसका एक ही कारण है कि हम साहित्य के उद्देष्य को ही नहीं समझते। जन–साधारण को उन्नत करने, उसके जीवन को विकसित करने के बदले हम साहित्य को अपने क्षुद्र व्यक्तित्व के घेरे में ही बांध ाकर रखना चाहते हैं। लेखक का व्यक्तित्व समाज के संघर्श में ही विकसित होकर पुश्ट होता है। इस तरह का व्यक्तित्व समाज के लिए साहित्य रचने से मुँह नहीं चुराता ।अन्तर्द्वन्द्रों की बात करके इस उत्तरदायित्व से वही लेखक बचने की कोषिष करते हैं जो संघर्श की आँच लगते ही 'लाज से छुई–मुई–सी म्लान' हो जाते हैं।

भारतेन्दु काल में साहित्य के नये पाठक उत्पन्न हुए। साहित्य का संरक्षण दरबारों में सीमित न रहा। पुस्तकें छपने और बिकने लगीय षिक्षित मध्यवर्ग के लोग उनके पाठक बनकर साहित्य के नये संरक्षक बने। हमारे साहित्य में एक नया युग आरम्भ हुआ। प्रेस ऐक्ट और साम्राज्यवादी दमन के बावजूद एक नयी स्वाधीनता पाने वाले लेखकों ने उससे लाभ उठाकर साहित्य को दरबारी दुनिया से बाहर निकाला, रीतिकाल की परम्परा से युद्ध किया, जनता में देषभक्ति और स्वाधीनता की भावना जगाई। तब से वह क्रम चला आ रहा है। सम्राज्यवादी षोशण पहले से और गहन हो गया। इसलिए लेखकों के लिए भी यह स्वाभाविक था कि वे और सचेत होकर उसका मुकाबला करें। साम्राज्यवादी युद्ध षुरू होने पर हिन्दुस्तान के लेखक भी जेल
गये, नजरबन्द रहे और अपने जीवन में उन्होंने इस बर्बर दमन के विरोध का परिचय पाया ।कोई नहीं कह सकता कि इससे उनका साहित्य निर्बल हो गया और वे साहित्य देवता के सिंहासन से नीचे गिर पड़े।

पन्द्रह अगस्त के बाद देष में एक परिवर्तन हुआ है। साम्राज्यवाद का वह पुराना रूप बदल गया है। हम अब अपने देष को अपना कह सकते हैं और उसके नव–निर्माण का भार खुद अपने कंधों पर उठा सकते हैं। लेकिन इसके साथ ही अपने आर्थिक और सैनिक प्रभुत्व
को कायम रखने के लिए साम्राज्यवाद ने यहाँ की प्रतिक्रियावादी षक्तियों को इस तरह सुरक्षित छोड़ दिया है कि वे आये दिन निर्माण कार्य को असम्भव बना रही हैं। निर्माण तो दूर, उन्होंने देष में विध्वस कार्य किया है कि अब निर्माण के लिए सँभलते–सँभलते न जाने कितने वर्श लग जायेंगे। यही नहीं, उत्तरी भारत में जो

सर्वनाष की जवाला धधक रही है, उसकी लपटें सारे हिन्दुस्तान में फैलाने का आयोजन किया जा रहा है। ब्रिटेन और अमरीका के प्रतिक्रियावादी बड़ी सजग दृ श्टि से इस जनसहार को देख रहे हैं। यह अराजकता उनके प्रभुत्व को बनाये राने के लिए एकमात्र आषा है। देषी रियासतों के बचे–खुचे सामंत और मिलों और कारखानों के मुनाफाखोर मालिक परस्पर गठबंधन करके जनता के खिलाफ एक फासिस्ट मोर्चा बना रहे हैं। वे पानी की तरह पैसा बहाकर हजारों की रैली करते हैं और उसमें हिन्दू धर्म या इस्लाम के रक्षक बनकर प्रकट होते हैं। लेखक की स्वाधीनता के सबसे बड़े षत्रु यही हैं। प्रकाष की व्यवस्था पर अपना पंजा जमाकर उन्होंने लेखक को अपना क्रीतदास बनाने का जाड्यंत्र रचा है। वे चाहते हैं कि लेखक या तो उनके जनहत्या और स्वाधीनता–विरोधी कार्य में सहयोग दे या फिर वह मौन रहकर नश्ट हो जाये। हिन्दी लेखकों पर यह उत्तरदायित्व है किबे अपनी स्वाधीनता के लिए लड़ते हुए इस सामंती और पूँजीवादी गठबंधन को तोड़े। पन्द्रह अगस्त के बाद देष की प्रगतिषील ताकतों को जहाँ आगे बढ़ने का मौका मिला है, वहाँ प्रतिक्रियावादी दल भी अपना अंत निकट आता देखकर बौखला उठा है। वह एड़ी–चोटी का जोर लगा रहा है कि सर्वनाष की लपटें सारे हिन्दुस्तान में फैल जायें। अपने हिलते हुए सिंहासन को सँभालने का उसे एक ही उपाय दिखाई देता है इस हत्या और लूट के साथ देषी रियासतों में प्रजा के आन्दोलन को कुचला जा रहा है। इसके बाद ब्रिटिष भारत में घूसखोर अफसर मुनाफाखोर मिल मालिक इस बात की कोषिष में लगे हैं कि जनता की ताक खत्म करके अपना प्रतिक्रियावादी षासन कायम कर लें। आज प्रष्न यह है कि जनता स्वाधीनता की तरफ बढ़े या अंग्रेजों और उनके पिट्ठू सामंतों, पूँजीवादियों की गुलामी स्वीकार करे। हमारे देष में जिन्दगी और मौत की लड़ाई छिड़ी हुई है। सबसे पहले हमें जन–हत्या की लपटों को बुझाना है, उसके बाद अंग्रेजों द्वारा छिन्न–भिन्न की हुई अपनी आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था पर ध्यान देना है। इस संघर्श में लेखकों का क्या स्थान होगा? क्या वे इससे तटस्थ रहेंगे? क्या वे प्रतिक्रियावादी षक्तियों का साथ देंगे? दोनो ही तरह से जनता का भविश्य अन्धकारमय होगा और उसके साथ हमारा साहित्य और संस्कृति भी रसातल चले जाएंगे। हमें एक स्वाधीन देष का लेखक बनना है। हम एक ऐसे देष के लेखक हैं जो सदियों की गुलामी के बाद फिर से आजादी की साँस लेना चाहता है। इस सॉस को बन्द करने के लिए बड़े–बड़े सामन्त और पूंजीपति अपनी उँगलियों से उसके गले को दबा रहे हैं। प्रत्येक स्वाधीन देष के लेखकों ने ऐसी दषा में इन प्रतिक्रियावादी षक्तियों का विरोध किया है। अपनी जान की बाजी लगाकर उन्होंने अपनी जनता और साहित्य के जीवन की रक्षा की है। हिन्दुस्तान के लेखक भी ऐसा ही करेंगे, इस बात की आषा की जा सकती है।

हत्या और लूट। सबसे पहले लेखक और जनता इस समस्या का वास्तविक रूप यही है कि तुम आजादी के साथ हो या गुलामी के साथ, जिन्दगी के साथ या मौत के साथ, उज्जवल भविश्य के साथ या अन्धकारमय सामन्ती युग के साधा घायल बसन्त ख हरिषंकर परसाई ,

कल बसन्तोत्सव था। कवि बसन्त के आगमन की सूचना पा रहा था—'प्रिय, फिर आया मादक बसन्त।

मैंने सोचा, जिसे बसन्त के आने का बोध भी अपनी तरफ से कराना पड़े, उस प्रिय से तो षत्रु अच्छा। ऐसे नासमझ को प्रकृति—विज्ञान पढ़ायेंगे या उससे प्यार करेंगे। मगर कवि को न जाने क्यों ऐसा बेवकूफ पसन्द आता है।

कवि मग्न होकर गा रहा था—

'प्रिय, फिर आया मादक बसन्त।'

पहली पंक्ति सुनते ही मैं समझ गया कि इस कविता का अन्त 'हा हन्त' से होगा, और हुआ । अन्त, सन्त, दिगन्त आदि के बाद सिवा 'हा हन्त' के कौन पद पूरा करता? तुक की यही मजबूरी है। लीक के छोर पर यही गहरा गढ़ा होता है। तुक की गुलामी करोगे तो आरम्भ चाहें 'बसन्त' से कर लो, अन्त जरूर 'हा हन्त' से होगा। सिर्फ कवि ऐसा नहीं करता। और भी लोग, सयाने लोग भी इस चक्कर में होते हैं। व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में तुक पर तुक बिठाते चलते हैं, और 'बसन्त' से षुरू करके 'हा हन्त' पर पहुँचते हैं। तुके बराबर फिट बैठती हैं, पर जीवन का आवेग निकल भागता है। तुकें हमारा पीछा छोड़ ही नहीं रही हैं। हाल ही में हमारी समाजवादी सरकार के अर्थमन्त्री ने दबा सोना निकालने की जो अपील की, उसकी तुक षुद्ध सर्वोदय से मिलायी— 'सोना दबाने वालो, देष के लिये स्वेच्छा से सोना दे दो।' तुक उत्तम प्रकार की थी साँप तक का दिल नहीं दुखा । पर सोना चार हाथ और नीचे चला गया। आखिर कब हम तुक को तिलांजलि देंगे? कब बेतु का चलने की हिम्मत करेंगे?

कवि ने कविता समाप्त कर दी थी। उसका 'हा हन्त' आ गया था। मैनें कहा, 'ध त्तेरे की!' 7 तुकों में ही दें बोल गया। राश्ट्रकवि इस पर कम—से—कम 51 तुकें बाँधते। 9 तुकें तो उन्होंने 'चक्र' पर बाँधी हैं। (देखो 'यषोधरा' पश्ठ 13) पर तू मुझे क्या बताएगा कि बसन्त आ गया। मुझे तो सुबह से ही मालूम है। सबेरे बसन्त ने मेरा दरवाजा भी खटखटाया था। मैं रजाई ओढे सो रहा था। मैंने पूछा — ''कौन ?'' जवाब आया— ''मैं बसन्त" मैं घबड़ा उठा। जिस दुकान से सामान उध ाार लेता हूँ, उसके नौकर का नाम भी बसन्तलाल है। वह उधारी वसूल करने आया था। कैसा नाम है, और कैसा काम करना पड़ता है इसे! इसका नाम पतझड़दास या तुशारपात होना था। बसन्त अगर उधारी वसूल करता फिरता है,

तो किसी दिन आनन्दकर थानेदार मुझे गिरफ्तार करके ले जायेगा और अमष्तलाल जल्लाद फॉसी पर टांग देगा!

बसन्तलाल ने मेरा मुहूर्त बिगाड़ दिया। इधर से कहीं ऋतुराज बसन्त निकलता होगा, तो वह सोचेगा कि ऐसे के पास क्या जाना जिसके दरवाजे पर सबेरे से उध ाारी वाले खड़े रहते हैं! इस बसन्तलाल ने मेरा मौसम हर खराब कर दिया। मैंने उसे टाला और फिर ओढ़का सो गया। आँखें झप गयीं। मुझे लगा, दरवाजे पर फिर दस्तक हुई। मैंने पूछा– ''कौन ?'' जवाब आया– ''मैं बसन्त ! मैं खीझ उठा– '' कह तो दिया फिर आना।'' उधर से जवाब आया– ''मैं बार–बार कब तक आता रहूँगा? मैं किसी बनिये का नौकर नहीं हूँ, ऋतुराज बसन्त हूँ। आज तुम्हारे द्वार पर फिर आया हूँ और तुम फिर सोते मिले हो। अलाल, अभागे, उठकर बाहर तो देख। ठूंठों नें भी नव पल्लव पहिन रखे हैं। तुम्हारे सामने की प्रौढ़ा नीम तक नवोढ़ा से हाव–भाव कर रही है– और बहुत भद्दी लग रही है। मैने मुँह उघाड़कर कहा, ''भई, माफ करना, मैने तुम्हें पहचाना नहीं। अपनी यही विडम्बना है कि ऋतुराज बसन्त भी आये, तो लगता है, उधारी के तगादेवाला आया। उमंगे तो मेरे मन में भी हैं, पर यार, ठण्ड बहुत लगती है।'' वह जानें के लिये मुडा । मैने कहा, ''जाते–जाते एक छोटा सा काम करते जाना। सुना है तुम उबड़–खाबड़ चेहरों को चिकना कर देते हो, 'फेसलिफ्टिंग' के अच्छे कारीगर हो तुम। तो जरा यार, मेरी सीढ़ी ठीक करते जाना, उखड़ गई है।''

उसे बुरा लगा। बुरा लगने की बात है। जो सुन्दरियों के चेहरे सुधारने का कारीगर है, उससे मैने सीढी सुधारने के लिये कहा। वह चला गया।

मैं उठा और षाल लपेटकर बाहर बरामदे में आया। हजारों सालों के संचित संस्कार मेरे मन पर लदे हैं, टिनों कवि कल्पनाएँ जमी है। सोचा, बसन्त है तो कोयल होगी ही। पर न कहीं कोयल दिखी न उसकी कूक सुनायी दी। सामने की हवेली के कंगूरे पर बैठा कौआ 'कॉव–कॉंव' कर उठा। काला, कुरूप, कुर्कष, कौआ मेरी सौन्दर्य – भावना को ठेस लगी। मैंने उसे भगाने के लिये कंकड़ उठाया। तभी खयाल आया कि एक परम्परा ने कौए को भी प्रतिश्ठा दे दी है। यह विरहणी को प्रियतम के आगमन का सन्देषा देने वाला माना जाता है। सोचा, कहीं यह आसपास की किसी विरहणी को प्रिय के आने का सगुन न बता रहा हो। मैं विरहणियों के रास्ते में कभी नहीं आता, पतिव्रताओं से तो बहुत डरता हूँ। मैनें कंकड़ डाल दिया। कौआ फिर बोला। नायिका ने सोने से उसकी चोंच मढ़ने का वायदा कर दिया होगा। षाम की गाड़ी से अगर नायक दौरे से वापिस आ गया, तो कल नायिका बाजार से आने वाले सामान की जो सूची उसके हाथ में देगी, उसमें दो तोला सोना भी लिखा होगा। नायक पूछेगा, ''प्रिये, सोना तो अब

काला बाजार में मिलता है। लेकिन अब तुम सोने का करोगी क्या?'' नायिका लजाकर कहेगी, ''उस कौए की चोंच मढ़ाना है, जो कल सबेरे तुम्हारे आने का सगुन बता गया था।'' तब नायक कहेगा, ''प्रिय, तुम बहुत भोली हो। मेरे दौरे का कार्यक्रम यह कौआ थोडे ही बनाता है, वह कौआ बनाता है जिसे हम 'बड़ा साहब' कहते हैं। इस कलूटे की चोंच सोने में क्यों मढाती हो ? हमारी दुर्दषा का यही तो कारण है कि तमाम कौए सोने की चोंच मढ़ाये है, और इधर हमारे पास हथियार खरीदने को सोना नहीं है। हमें तो कौओं की चोंच से सोना खरोंच लेना है। जो आनाकानी करेंगे, उनकी चोंच काटकर सोना निकाल लेंगे। प्रिये, वह बड़ी गलत परम्परा है, जिसमें हंस और मोर की चोंच तो नंगी रहे, पर कौए की चोंच पर सुन्दरी खुद सोना मढ़े : '' नायिका चुप हो जाएगी। स्वर्ण–नियंत्रण कानून से सबसे ज्यादा नुकसान कौओं और विरहणियों का हुआ है। अगर कौए ने 14 कैरेट के सोने से चोंच मढ़ाना स्वीकार नहीं किया, तो विरहणी को प्रिय के आगमन की सूचना कौन देगा ? कौआ फिर बोला। मैं इससे युगों से घरणा करता हूँ, तब से जब इसने सीता के पांव में चोंच मारी थी। राम ने अपने हाथ से फूल चुनकर, उनके आभूशण बनाकर सौता को पहनाये। इसी समय इन्द्र का बिगडैल बेटा जयन्त आवारागर्दी करता वहाँ आया और कौआ बनकर सीता के पैर में चोंच मारने लगा। ये बड़े आदमी के बिगड़ैल लड़के हमेषा दूसरों का प्रेम बिगाड़ते हैं। यह कौआ भी मुझसे नाराज हैं, क्योंकि मैंने अपने घर के झरोखों में गौरैयों को घोंसले बना लेने दिये हैं।

पर इस मौसम में कोयल कहाँ है ? वह अमराई में होगी। कोयल से अमराई छूटती नहीं है, इसलिए इस बसन्त में कौए की बन आई है। वह तो मौकापरस्त है, घुसने के लिए पोल ढूंढता है। कोमल ने उसे जगह दे दी है। वह अमराई की छाया में आराम से बैठी है। और इधा हर ऊँचाई पर कौआ बैठा 'कांव–कांव' कर रहा है। मुझे कोयल के पक्ष में उदास पुरातन प्रेमियों की आह भी सुनाई देती है, 'हाय, अब ये अमराईयाँ यहाँ कहाँ हैं कि कोयलें बोलें। यहाँ तो से षहर बस गये हैं, और कारखानें बन गये हैं'' मैं कहता हूँ कि सर्वत्र अमराईयाँ नहीं हैं, तो ठीक ही नहीं है। आखिर हम कब तक जंगली बने रहते ? मगर अमराई और कुंज और बगीचे भी हमें प्यारे हैं। हम कारखाने को अमराई से घेर देंगे और हर मुहल्ले में बगीचा लगा देंगे। अभी थोड़ी देर है । पर कोयल को धीरज के साथ हमारा साथ तो देना था। कुछ दिन धूप तो हमारे साथ सहना था। जिसनें धूप में साथ नहीं दिया, वह छाया कैसे बॉटायेगी ? जब हम अमराई बना लेंगे, तब क्या वह उसमें रह सकेगी ? नहीं, तब तक तो कौए अमराई पर कब्जा कर लेंगे। कोयल को अभी

आना चाहिए। अभी जब हम मिट्टी खोदें, पानी सींचें और खाद दें, तभी से उसे गाना चाहिए।

कौआ फिर बोला । विरहणी की भावना का खयाल करके मैं सह रहा हूँ।

मैं बाहर निकल पड़ता हूँ। चौराहे पर पहली बसन्ती साड़ी दिखी। मैं उसे जानता हूँ। यौवन की एड़ी दिख रही है– वह जा रहा है–वह जा रहा है। अभी कुछ महीने पहले ही षादी हुई है। मैं तो कहता आ रहा था कि चाहे कभी ले, 'रूखी री यह डाल वसन बासन्ती लेगी' (निराला)। उसने वसन बासन्ती ले लिया। कुछ हजार में उसे यह बूढ़ा हो रहा पति मिल गया। वह भी उसके साथ है। बसन्त का अन्तिम चरण और पतझड़ साथ जा रहे हैं। उसने माँग में बहुत–सा सिन्दूर चुपड़ रखा है। जिसकी जितनी मुष्किल से षादी होती है, वह बेचारी उतनी ही बड़ी मांग भरती है। उसने बड़े अभिमान से मेरी तरफ देखा। फिर पति को देखा। उसकी नजर में उसक और ताना है, जैसे अंगूठा दिखा रही है कि ले, मुझे तो यह मिल ही गया। मगर यह क्या ? वह ठण्ड से कांप रही है और 'सी–सी' कर रही है। बसन्त में बासन्ती साड़ी को कँपकँपी छूट रही है।

यह कैसा बसन्त है जो षीत के डर से कॉप रहा है ? क्या कहा था विद्यापति ने– 'सरस बसन्त

• समय भल पाओलि दछिन पवन बहु धीरे!' नहीं मेरे कवि, दक्षिण में मलय पवन नहीं बह रहा। यह उत्तर से बर्फीली हवा आ रही है। हिमालय के उस पार से आकर इस बर्फीली हवा ने हमारे बसन्त का गला दबा दिया है। हिमालय के पार बहुत–सा बर्फ बनाया जा रहा है जिसमें सारी मनुश्य जाति को मछली की तरह जमाकर रखा जायेगा। यह बड़ी भरी साजिष है –बर्फ की साजिष! इसी बर्फ की हवा ने हमारे आते बसन्त को दबा रखा है।

यों हमें विष्वास है कि बसन्त आयेगा । षेली ने कहा है, 'अगर षीत आ गई है, तो क्या बसन्त बहुत पीछे होगा ?' बसन्त तो षीत के पीछे लगा हुआ ही आ रहा है। पर उसके पीछे गरमी भी तो लगी है। अभी उत्तर से षीत लहर आ रही है तो फिर पष्चिम से लू भी तो चल सकती है। बर्फ और आग के बीच में हमारा बसन्त फँसा है। इधर षीत उसे दबा रही है और उध र से गरमी और बसन्त सिकुड़ता जा रहा है।

मौसम की मेहरबानी पर भरोसा करेंगे, तो षीत से निपटते – निपटते लू तंग करने लगेगी। मौसम के इन्तजार से कुछ नहीं होगा । बसन्त अपने आन नहीं आता, उसे लाया जाता है। सहज आने वाला तो पतझड़ होता है, बसन्त नहीं। अपने आन तो पत्ते झड़ते हैं। नये पत्ते तो वृक्ष का प्राण–रस पीकर पैदा होते हैं। बसन्त यों नहीं आता। षीत और गरमी के बीच से जो जितना बसन्त निकाल सके,

निकाल लो। दो पाटों के बीच में फँसा है, देष का बसन्त । पाट और आगे खिसक रहे हैं । बसन्त को बचाना है तो जोर लगाकर इन दोनों पाटों को पीछे ढकेलो–इधर षीत को, उधर गरमी को। तब बीच में से निकलेगा हमारा घायल बसन्त ।

गद्य की अन्य विधाएँ

आधुनिक हिन्दी साहित्य काल को कपितय विद्वानों ने गद्यकाल कहा है। आज हिन्दी गद्य अत्यन्त विकसित अवस्था में है। गद्य की विभिन्न विधाओं का जितना विकास वर्तमान काल में दरश्टिगोचर होता है उतना हिन्दी साहित्य के किसी अन्य काल में नहीं। इन विधाओं में नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध एवं आलोचना प्रमुख हैं परन्तु ये विधाएँ आज पुरानी सी प्रतीत होती है, इनके अतिरिक्त हिन्दी गद्य–क्षेत्र में जो नई विधाऐं उभर कर आयी हैं। उनमें ललित निबन्ध, संस्मरण, रेखाचित्र, यात्रावष्त, डायरी, रिपोर्ताज, इण्टरव्यू (भेंट–वार्ता), आत्मकथा एवं हास्य व्यंग्य आदि ने साहित्य में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है।

ललित निबन्ध

निबन्ध विधा का ही एक सुविकसित रूप ललित निबन्ध है। हिन्दी ललित निबन्धों का क्रमिक विकास भारतेन्दु युग से ही माना जाता है। आत्मभिव्यंजक निबन्धों की परम्परा भारतेन्दु एवं उनके मण्डल के निबंधकारों ने प्रारम्भ की। षुक्लोत्तर युग में इसकी अलग पहचान बनी। इस परम्परा के प्रतिश्ठित निबंधकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी हैं। आपके निबंध न तो गंभीरता का तेवर छोड़ते हैं और न सहजता का बाना द्य

ललित निबंधों के क्षेत्र में डॉ. विद्या निवास मिश्र की अपनी पहचान अलग है। आपने अपने निबंधों में भारतीय संस्कृति और साहित्य के साथ–साथ लोक जीवन को भी जोड़ने का स्तुत्य प्रयास किया है। मिश्र जी के अनेक निबंध संकलन प्रकाषित हो चुके हैं। जिनमें – चितवन की छाँह, कदम की फूली डाल, तुम चन्दन हम पानी, मेरे राम का मुकुट भीग रहा है आदि प्रमुख हैं।

अन्य ललित निबंधकारों में डॉ. रामविलास षर्मा, कुबेर नाथ राय, षिवप्रसाद सिंह आदि प्रमुख हैं।

आत्मकथा :

आत्मकथा साहित्य की एक सरस संस्मरणात्मक गद्य विधा है। आत्मकथा का षाब्दिक अर्थ होता है स्वयं की कहानी, अर्थात् लेखक का स्वयं अपने बारे में वर्णन

करना। इसमें लेखक अपनी जीवन गाथा को अपनी स्मृति के आधार पर उत्तम पुरुश में व्यक्त करता

आत्मकथा एवं संस्मरण में अन्तर :

यद्यपि आत्मकथा एक संस्मरणात्मक विधा है। फिर भी यह संस्मरण से भिन्न होती है। अंग्रेजी विद्वान षिरले ने दोनों के अन्तर को इन षब्दों में व्यक्त किया है 'यद्यपि आत्मकथा और संस्मरण देखने में समान प्रतीत होते हैं परन्तु दोनों में अन्तर है। एक में चरित्र पर बल दिया और दूसरे में बाह्य घटनाओं, वस्तु आदि के विवरणों और वर्णनों पर ही बल दिया जाता है। संस्मरण में लेखक अधिकांषतः अपने से अलग उन व्यक्तियों, वस्तुओं और क्रियाकलापों आदि का संस्मरणात्मक चित्रण करता है, जिनका उसके निजी जीवन में समय–समय पर साक्षात्कार हो चुका होता है। इन व्यक्तियों, वस्तुओं, क्रिया कलापों आदि के वर्णनों में संस्मरणात्मक आनन्द होते हुए भी एक प्रकार के सिलसिले का अभाव होता है जबकि आत्मकथा में यह विच्छृंखलता नहीं पायी जाती है।

आत्मकथा में लेखक अपने जीवन को ही आधार बनाता है। अतः उसे बड़ी ही निश्पक्षता का निर्वाह करना होता है। वह जितनी ईमानदारी एवं सत्यता से स्वयं अपने जीवन को उद्‌घाटित करेगा। आत्मकथा उतनी ही सहज, स्वाभाविक एवं प्रभावषाली होगी। लेखक के अपने जीवन में जो भी खट्टे मीठे अनुभव होते हैं उन्हें बिना किसी लाग लपेट के उसे व्यक्त करना होता है। आकर्शक, रोचक और मार्मिक आत्मकथाएँ प्रस्तुत करने वालों में महात्मा गाँधी, राजेन्द्र प्रसाद, जवाहर लाल नेहरू, गोविन्द दास, सिया राम षरण गुप्त, षान्तिप्रिय द्विवेदी एवं बाबू गुलाब राय आदि के नाम अग्रगण्य हैं। यह विधा आज भी अनवरत रूप से हिन्दी साहित्य के भण्डार को भरती जा रही है।

संस्मरण :

संस्मरण का षाब्दिक अर्थ होता है सम्यक् स्मरण । सम्यक् स्मरण के मूल में होता है गंभीर चिन्तन । मानव जीवन की कटु, तिक्त एवं मधुर स्मृतियाँ, अनुभूति और संवेदना का संसर्ग प्राप्त करके जब हृदय से निकलती है तब वह संस्मरण का रूप धारण कर लेती है। संस्मरण आध निक गद्य साहित्य की एक उत्कृश्ट एवं नवीन विधा है।

संस्मरण और रेखाचित्र :

संस्मरण और रेखाचित्र पर्याप्त निकट की विधायें स्वीकार की जाती हैं। दोनों में ही अतीत की घटनाओं, स्मषतियों, भावानुभूतियों का ऐसा चित्रण रहता है कि उनमें वर्णित वस्तु, घटना एवं स्मषति के यथार्थ चित्र सामने उभर आयें और

भावनामूलक तथा कल्पनामूलक रोचकता, यथार्थ के साथ मिली–जुली रहे। दोनों में लेखक की व्यक्तिगत रुचियों की महत्ता होती है।

इसके साथ ही साथ दोनों में अन्तर भी पर्याप्त है– संस्मरण अधिकतर प्रसिद्ध व्यक्तियों द्वारा प्रसिद्ध व्यक्तियों के सम्बन्ध में लिखे जाते हैं, पर रेखाचित्र सामान्य व्यक्ति पर भी लिखा जा सकता है। रेखाचित्र चरित्र उभारने का कार्य करता है, अतः उसे चारित्रिक चित्र भी माना जाता है, जबकि संस्मरण व्यक्ति–विषेश के चरित्र का दर्पण बनकर सामने आता है। संस्मरण परिस्थिति विषेश का, क्षण–विषेश का एक सजीव बिम्ब उभारकर पाठक के मन में उस बिम्ब को साकार कर देता है।

संस्मरण विधा का विकास

सन् 1907 में बाबू बालमुकुन्द गुप्त ने पं. प्रताप नारायण मिश्र के संस्मरण लिखकर इस विध का सूत्रपात किया, पर इसका व्यवस्थित रूप सन् 1920 के पष्चात् माना जाता है। इसके विकास में माधुरी विषाल भारत आदि पत्रिकाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

डॉ. त्रिगुणायत इसका प्रथम लेखक सत्यदेव परिवाजक को स्वीकार करते हैं। 1905 के आस–पास आपने अमरीका की यात्रा की और उस यात्रा से सम्बन्धित संस्मरणों का सजीव वर्णन किया जो भाव तथा प्रभाव दोनों से परिपूर्ण है।

मध्य काल

इस युग के कई विख्यात संस्मरण लेखक हैं – पं. सुन्दरलाल (बालकृश्ण भट्ट से सम्बन्धि त संस्मरण 'विषाल भारत' में), श्री अमष्तलाल चतुर्वेदी (मेरे प्रारम्भिक जीवन की स्मषतियाँ), श्रीनिवास षास्त्री (मेरी जीवन–स्मषतियाँ), पं. बनारसीदास चतुर्वेदी (श्रीधर पाठक विशयक संस्मरण), पं. रामनारायण मिश्र (अनागरिक ध र्मपाल), रूपनारायण पाण्डेय (द्विवेदीजी), गोपालराम गहमरी (साहित्यिक के संस्मरण), राजा राधिकारमण सिंह ('वे और हम', 'तब और अब', 'टूटा तारा' आदि) बाबू ष्याम सुन्दरदास (लाला भगवान दीन पर), रामदास गौड़ (राय देवी प्रसाद पूर्ण तथा श्रीधर पाठक पर) आदि ने सुन्दर संस्मरण लिखे हैं।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भी कुछ अच्छे संस्मरण लिखे हैं। पद्मसिंह षर्मा ने 'पद्मराग षीर्शक के अन्तर्गत सुन्दर संस्मरण लिखे हैं। महादेवी वर्मा ने 'पथ के साथी नामक संकलन में प्रसाद पन्त, निराला, मैथिली षरण गुप्त, सुभद्रा कुमारी चौहान, सियाराम षरण गुप्त आदि पर संस्मरण लिखे हैं। डॉ. राजनाथ षर्मा के अनुसार – इनमें संस्मरण के साथ–साथ रेखाचित्र की विषेशताओं का समावेष होने के कारण उनके प्रभाव और मार्मिकता में आषातीत वृद्धि हुयी हैं।

आधुनिक काल :

इस काल में संस्मरण का रूप और निखरा । महादेवी जी के संस्मरण इस विधा को पर्याप्त निखार चुके थे। इसी क्रम में आचार्य चतुरसेन षास्त्री के संस्मरणों में पर्याप्त निखार आया। उन्होंने लोकमान्य तिलक से लेकर जवाहर लाल नेहरू तक, सरदार भगतसिंह जैसे क्रान्तिकारी, वैज्ञानिक डॉ. षान्तिस्वरूप भटनागर और साहित्यकारों में जैनेन्द्र पर लिखा। उनके संस्मरणों में उनका भानवतावादी स्वर ही सर्वत्र मुखरित हुआ है। ये संस्मरण इस बात के प्रमाण है कि षास्त्रीजी अपने समकालीन युग–जीवन की विभिन्न गतिविधियों के साथ घनिश्ठ रूप से सम्पर्क में रहे थे। ये संस्मरण इतने सुन्दर और मार्मिक हैं कि इनके मध्य से षास्त्री जी अपने युगीन जीवन का एक व्यापक यथार्थ रूप प्रस्तुत करने में पूर्ण समर्थ हैं इस क्रम में अन्य स्मरणीय नाम हैं– श्रीमती षिवरानी (प्रेमचन्दः घर में), श्री नारायण चतुर्वेदी (गुप्त का हास्य–व्यंग्य), रामवक्ष बेनीपुरी (जंजीरें और दीवारें), षान्तिप्रिय द्विवेदी (पद चिन्ह), कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर (दीप जले, षंख बजे), आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी (मृत्युंजय रवीन्द्रनाथ), रघुवीर सिंह (षेश स्मृतियाँ), षंकर व्यास (प्रसाद और उनके समकालीन), काका साहेब कालेलकर (स्मरण यात्रा), माखन लाल चतुर्वेदी (समय के घाव), राहुल सांकृत्यायन (बचपन की स्मृतियाँ), रामनाथ सुमन (हमारे नेता), जैनेन्द्र (वे और वे), पंडित किषोरी दास बाजपेयी (बालकृश्ण भट्ट), देवेन्द्र सत्यार्थी (रेखाऐं बोल उठीं), भगवत षरण उपाध्याय (मैनें देखा), अज्ञेय (अरे यायावर रहेगा याद), राय कृश्ण दास (जवाहर भाई), उपेन्द्र नाथ अष्क (ज्यादा अपनी कम पराई) आदि।

भगवती प्रसाद बाजपेयी (महाप्राण निराला), विनय मोहन षर्मा (लक्ष्मी चन्द्र बाजपेयी), देवेन्द्र सत्यार्थी (बलराज साहनी), जगदीष चन्द्र जैन (चीन की दीवार), डॉ. महादेव साहा (सुनीति कुमार चटर्जी), कुसुमाकर (उग्र जी), मोहन सिंह सेंगर (मानवेन्द्र राय), मणिका देवी (उस्ताद अलाउद्दीन खाँ), जगदीष चन्द्र माथुर (दस तस्वीरें), डॉ. नगेन्द्र (चेतना के बिम्ब), दिनकर (लोकदेव नेहरू), बच्चन (नये पुराने झरोखे), ओमकार षरद (लंका महाराजिन), क्षेमचन्द्र सुमन (विभिन्न साहित्यकारों के संस्मरण), डॉ. भगवान दास माहौर के क्रान्तिकारी बन्धुओं पर (देष की धरोहर के अन्तर्गत) !

इसके अतिरिक्त श्रीराम षर्मा, डॉ. प्रभाकर माचवे, डॉ. रघुवंष, डॉ. विद्यानिवास मिश्र और डॉ. विश्णुकांत षास्त्री नाम उल्लेखनीय हैं।

रिपोर्ताज :

रिपोर्ताज षब्द का प्रचलन अंग्रेजी के 'रिपोर्ट' के पर्यायवाची के रूप में किया गया। यह षब्द फ्रेंच भाशा का है। इसके लिए हिन्दी में सूचनिका' षब्द का भी प्रयोग किया जाता है। इसका अभिप्राय किसी घटना का यथातथ्य वर्णन है।

उमजम और तिम :

द्वितीय विष्वयुद्ध के समय गद्य की एक नवीन विधा यूरोप में जन्मी । साहित्यकार स्वयं युद्धक्षेत्र में गये और वहां के समाचार सर्वथा नये ढंग से भेजे, ये समाचार ही 'रिपोर्ताज' कहलाये। प्रख्यात रूसी लेखक पलिया पहरनबर्ग के लिखे रिपोताजों ने विष्व में प्रसिद्धि पायी।

हिन्दी में इस विधा का सूत्रपात बंगाल के भयानक अकाल (1943) से माना जाता है। डॉ. रांगेय राघव स्वयं अकालग्रस्त बंगाल गये, वहां से जो समाचार भेजे, उन्होंने ही रिपोर्ताज का रूप धारण कर लिया। उनके ये रिपोर्ताज 'तूफानों के नाम' से प्रकाषित हुए। डॉ. देवी षरण रस्तोगी रिपोर्ताज के सूत्रपात करने का श्रेय भी कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर जी को प्रदान करते हैं। 1926 के गुरुकुल कांगड़ी की रजत जयंती से सम्बन्धित उनका रिपोर्ताज, हिन्दी का पहला रिपोर्ताज माना जाता है। डॉ. ओमप्रकाष सिंघल के मतानुसार हिन्दी में रिपोर्ताज की परम्परा के सूत्रपात का श्रेय प्रभाकर जी को नहीं, श्री षिवदान सिंह चौहान को मिलना चाहिए। सबसे पहले सन् 1938 में उन्हीं का रिपोर्ताज 'लक्ष्मीपुरा' प्रकाषित हुआ था।

हिन्दी के प्रसिद्ध रिपोर्ताज :

प्रारम्भ पर भले ही विवाद हो, पर हिन्दी में कई प्रतिश्ठित रिपोर्ताज सामने आये हैं। जिनमें प्रतिश्ठित लेखक हैं– प्रकाष चन्द्र गुप्त इनके घटना प्रधान रिपोर्ताज 'रेखाचित्र' संग्रह, में संकलित हैं, जिनमें से 'स्वराज्यभवन', 'अल्मोड़े का बाजार', 'बंगाल का अकाल' महत्वपूर्ण हैं। अमष्तराय, प्रभाकर माचवे के भी कई रिपोर्ताज प्रकाषित हुए हैं। उपेन्द्रनाथ अष्क (रेखाएं और चित्र –संकलन जिसमें पहाड़ों में 'प्रेममय संगीत' प्रमुख हैं) । 'रामनारायण उपाध्याय (गरीब और अमीर षीर्शक जिसमें नव वर्शाक समारोह महत्वपूर्ण हैं)।' षमोर बहादुर सिंह (क्लाट का मोर्चा) कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर (क्षण बोले कण मुस्कुराए) के साथ विश्णु प्रभाकर के भी रिपोर्ताज सामने आए हैं।

यह क्रम गतिमान रहा और फणीष्वर नाथ रेणु (एकलव्य के नोट्स), भदन्त आनन्द कौषल्यायन (देष की मिट्टी बुलाती है), षिवसागर मिश्र (वे लड़ेंगे हजारों साल), डॉ. भगवत षरण उपाध्याय (खून के छींटे), रामकुमार (पेरिस के नोट्स), श्रीकान्त वर्मा (मुक्ति फौज), कमलेष्वर (क्रान्ति करते हुए आदमी को देखा), डॉ. ६ार्मवीर भारती (युद्ध यात्रा), पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी (मोटर स्टैण्ड), विवेकी राय (बाढ़ ! बाढ़ द्यद्य बाढ़ !!!), कैलाष नारद (धरती के लिए), जगदीष प्रसाद चतुर्वेदी (चीनियों द्वारा निर्मित काठमाण्डू ल्हासा सड़क), निर्मल वर्मा (प्रातः एक स्वप्न), सतीष कुमार (क्या हमने कोई जाणयंत्र रचा था) बालकृश्ण राव (कमल कान्त जी ने कहा), जगदीष चन्द्र जैन (पीरिडा की डायरी), अमृतलाल नागर (

गदर के फूल), प्रभाकर माचवे (जब प्रभाकर पाताल गए), लक्ष्मी चन्द्र जैन (कागज की किष्तियाँ) आदि के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

उपसंहार :

इस प्रकार यह माना जा सकता है कि रिपोर्ताज ने हिन्दी में अपने लिए अच्छा–खासा क्षेत्र बना लिया है। कितने ही वरिश्ठ साहित्यकारों ने उसमें कलम आजमाई है और उन्हें अपने प्रयासों में सफलता भी मिली है। यह भी निष्चित है कि ज्यों–ज्यों पत्रकारिता का विकास होता जा रहा है, यह परम्परा भी निखरती जा रही है।

यात्रा–वष्त

यात्रा मानव का एक स्वाभाविक क्रिया व्यापार है। सभ्यता के विकास के साथ ही यात्रायें होती रही हैं और उनके वर्णन भी लिखे जाते रहे है– इन्हें आमतौर पर यात्रा – वष्तान्त माना जाता है। पर जिन यात्रा – वष्तों को साहित्य की श्रेणी में समाहित किया जाता है उसमें साहित्यिकता का समावेष आपेक्षित है। यात्रा कई प्रकार की होती है पर जो यात्रा घुमक्कड़पन या यायावरी को समेटे होती है, उसी का वर्णन साहित्य के क्षेत्र में आ सकता है। जिस वर्णन में प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण और वर्णन मुक्त एवं तटस्थ हो यात्रा– वष्त माना जा सकता है।

यात्रा–वर्णन की परम्परा :

यात्रा वष्त को सुविधा के लिए दो भागों में विभाजित किया जा सकता

(1) प्रारम्भिक काल (भारतेन्दु युग)

(2) वर्तमान काल (द्विवेदी युग के अन्तिम चरण से आज तक)

(1) प्रारम्भिक काल :

यह बात स्वीकार करते हुए भी कि यायावरी की स्थिति के साथ साहित्यिकता का अति क्षीण पुट ही इस युग की यात्राओं में झलकता है, फिर भी इनका इतना महत्व माना जा सकता है कि इनके माध्यम से इस विद्या को विकास मिलता है। डॉ. सुरेन्द्र माथुर (यात्रा – साहित्य का उद्‌भव और विकास) के अनुसार इस कोटि की प्रमुख रचनाएं हैं– विठ्‌ठल जी की वन यात्रा, जीवन जी को माँ की वन यात्रा, किसी अज्ञात व्यक्ति की सेठ पद्‌म सिंह की यात्रा, तथा यात्रा – परिक्रमा, भारतेन्दु बाबू के पाँच यात्रा–विशयक निबन्ध, प्रतापनारायण मिश्र तथा बालकृश्ण भट्ट के यात्रा सम्बन्धी निबन्ध, हरदेवी की लंदन यात्रा, भगवान दास वर्मा, दामोदर षास्त्री, तोताराम वर्मा, स्वामी सत्यदेव परिव्राजक की मेरी जर्मन यात्रा, यूरोप की सुखद स्मृतियाँ, ज्ञान के उद्यान में, नयी दुनिया के मेरे अद्‌भुत जमतत, ंजंत प्रवास की मेरी अद्‌भुत कहानी, षिवप्रसाद गुप्त की पृथ्वी प्रदक्षिणा तथा गोपाल राम गहमरी की यात्रा विशयक रचनाएं।

संस्मरण, अमरीका

(2) वर्तमान काल :

इस काल में वे रचनाएं आती है जिन्हें सच्चे अर्थों में 'साहित्य' के अन्तर्गत रखा जा सकता है उनमें किसी दरष्य, स्थान अथवा व्यक्ति के 'आकर्शण' (सौन्दर्य) को उभारने की प्रवति मिलती है।

किसी लेखक ने यायावारी को भी उभारने का प्रयास किया है। प्रमुख लेखक इस प्रकार हैं

रामनारायण मिश्र (यूरोप यात्रा के छह मास), कन्हैयालाल मिश्र (हमारी जापान यात्रा), प्रो. मनोरंजन (उत्तराखंड के पथ पर), जवाहरलाल नेहरू (आँखों–देखा रूस), सेठ गोविन्ददास (सुदूर दक्षिण–पूर्व, परथ्वी परिक्रमा), सूर्यनारायण व्यास (सागर – प्रवास), दिनकर (देष–विदेष), यषपाल जैन (रूस में 46 दिन), देवेन्द्र सत्यार्थी (चाँद सूरज के वीरन), धर्मवीर भारती (ठेले पर हिमालय), भुवनेष्वर प्रसाद 'भुवन' (आँखों–देखा यूरोप), विश्णु प्रभाकर (हँसते निर्झर, दहकती माटी), बजकर नारायण (नन्दन से लन्दन), अक्षय कुमार जैन (दूसरी दुनिया), राहुल सांकृत्यायन का इस क्षेत्र में विषेश महत्व है। उनके कई यात्रा वष्त हैं– 'मेरी लदाख यात्रा', 'किन्नर देष में', 'राहुल यात्रावली', 'यात्रा के पने', 'रूस में पच्चीस मारल 'एषिया के दुर्गम भूखण्डों में', आदि प्रसिद्ध हैं।

इसी क्रम में विषेश उल्लेखनीय हैं भगवतषरण उपाध्याय (सागर की लहरों पर), अमष्तराय (सुबह के रंग), यषपाल (लोहे की दीवार के दोनों ओर), रामवष्क्ष बेनीपुरी (पैरों में पंख बाँधकर तथा पेरिस नहीं भूलती), मोहन राकेष (आखिरी चट्टान) देवेषदास (यूरोप तथा राजवाडे), सत्यनारायण (आवारे की यूरोप यात्रा एवं युद्ध यात्रा) विट्ठलदास मोदी (काष्मीर में 15 दिन), राधेय राघव (तूफानों के बीच), अज्ञेय (अरे यायावर रहेगा याद तथा 1.'. –एक बूंद सहसा उछली), डॉ. जगदीषषरण षर्मा (ज्ञान की खोज में), स्वामी सत्यदेव

परिब्राजक (मेरी पांचवी जर्मन यात्रा), षिवप्रसाद (परथ्वी प्रदक्षिणा), गोपाल नेवटिया (भूमण्डल की यात्रा), सन्तराम (स्वदेष–विदेष यात्रा), स्वामी सत्य भक्त (अरबों के देष में), सेठ गोविन्ददास (हमारा प्रधान उपनिवेषी), सूर्य नारायण व्यास (सागर प्रवास)। इसके अतिरिक्त डॉ. नगेन्द्र की कृतियाँ 'तंत्रालोक से यंत्रालोक तक' और 'अप्रवासी की यात्रा' भी इसी कोटि में आती हैं।

इसके अतिरिक्त भूतपूर्व संसद सदस्य रामेष्वर–टॉटिया ने भी अपने विदेष भ्रमण के अनुभवों और संस्मरणों को बड़ी रोचक षैली में छोटे–छोटे यात्रा – निबंधों के रूप में प्रस्तुत किया है। यषपाल ने 'सारिका' और धर्मवीर भारती ने 'धर्मयुग' में अपनी मॉरीषस यात्राओं के विवरण प्रस्तुत किए हैं।

इसके अतिरिक्त भी कतिपय नाम और उल्लेखनीय हैं डॉ. रामविलास षर्मा, अमृतलाल नागर, राजेन्द्र यादव ने दक्षिण भारत की यात्राओं का विवरण दिया है। राजेन्द्र अवस्थी, कन्हैयालाल नन्दन आदि के भी कतिपय श्रेश्ठ निबन्ध उपलब्ध हैं। आजकल पत्र–पत्रिकाओं में भी इस प्रकार के विवरण प्रकाषित हो रहे हैं, जिनमें विभिन्न क्षेत्रों के जन–जीवन, संस्कृति आदि का विषेश चित्रण होता है।

माड्यूल – 3 गद्य की अन्य विधाएँ और संकलित रचनाकार

bdkb& 9 ejh nfudh dk ,d i"B ¼vkydFkk½] vFkkrk ?keDdM &ftKklk ¼fjikrkt½

रेखाचित्रएवं संस्मरण की अपेक्षा यह हिन्दी के लिए नवीन वस्तु है। 'इण्टरव्यू' का अभीकोई सर्वसम्मत हिन्दी पर्यायवाची षब्द प्रचलित नहीं हुआ है। यद्यपि इसके लिए'भेंट', 'भूटवार्ता' 'चर्चा', 'विषेश परिचर्चा', 'साक्षात्कार' आदि षब्द प्रयुक्त किए गएहैं किन्तु अधिकांषतः इण्टरव्यू षब्द ही प्रचलित है। इण्टरव्यू का षाब्दिक अर्थहोगा आन्तरिक दृश्टिकोण। इस प्रकार 'भेंटवार्ता' वह विधा है जिसके माध्यम सेभेंटकर्ता किसी महान व्यक्ति के मन और जीवन में प्रष्नों के झरोखे से झाँककर,उसके आन्तरिक दृश्टिकोण को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है।

इण्टरव्यू में उन विषिश्ट एवं ख्याति प्राप्त व्यक्तियों को लिया जाता है जिसके विचारों को जानने की जनसाधारण के ह्रदय में सहज जिज्ञासा होती है। 'इण्टरव्यू' षब्द से आज एक ऐसी विषिश्ट कोटि की साहित्यिक विधा का बोध होता है, जिसमें एक जिज्ञासु व्यक्ति जीवन के किसी क्षेत्र में विद्यमान अन्य किसी व्यक्ति (विषेशकर प्रख्यात और महत्वपूर्ण व्यक्ति) से प्रत्यक्ष मिल कर उसके बारे में सीधे–सीधे जानकारी प्राप्त करता है।

डॉ. गोविन्द त्रिगुणयात ने इण्टरव्यू के स्वरूप को स्पश्ट करते हुए इस प्रकार परिभाशित करने का प्रयास किया है दृ "इण्टरव्यू उस रचना को कहते हैं, जिसमें लेखक किसी व्यक्ति विषेश से प्रथम भेंट में अनुभव होने वाली उसके सम्बन्ध में अपनी क्रियाओं तथा प्रतिक्रियाओं को अपनी पूर्व धारणाओं, आस्थाओं एवं रूचियों से रंजित कर सरस भावपूर्ण ढंग से व्यंजना प्रध न षैली में बँधे हुए षब्दों में व्यक्त करता है। ''

डॉ. ओमप्रकाष सिंहल का कथन है इण्टरव्यू से अभिप्राय उस रचना से है, जिसमें लेखक व्यक्ति विषेश के साथ साक्षात्कार करने के बाद प्रायः निष्चित प्रष्नमाला के आधार पर उसके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के सम्बन्ध में प्रामाणिक जानकारी प्राप्त करता है और फिर अपने मन पर पड़े प्रभाव को लिपिबद्ध कर डालता है। ''

इस विधा के लिए किसी महान् पुरूश से भेंटवार्ता को ही क्यों महत्व दिया जाता है, इसका उत्तर डॉ. रामचन्द्र तिवारी के कथन में मिल जाता है

"इण्टरव्यू में उत्तर देने वाले का विख्यात और महिमामय होना आवष्यक है। ऐसी स्थिति में ही उनके उत्तर मूल्यवान होते हैं तथा अधिकाधिक लोगों का ध्यान आकाट करते हैं। ''

इण्टरव्यू कुछ निष्चित प्रष्नों के आधार पर होता है। इण्टरव्यू कुछ निष्चित प्रष्नों के माध्यम से व्यक्ति विषेश का सीधा परिचयात्मक साक्षात्कार पाठकों से करा देता है। यह विधा पत्रकारिता के अधिक समीप है। इण्टरव्यू 'महान एवं लघु' के मध्य ही अधिक षोभा देता है। 'लघु' के हृदय की श्रद्धाभावना को देखकर 'महान' में सब कुछ कह देने की भावना जाग उठती है। कभी–कभी दो भिन्न क्षेत्रों की विभूतियों के इण्टरव्यू भी अत्यन्त रोचक बन जाते हैं। एक साहित्य और एक कलाकार के मध्य का इण्टरव्यू विविध, नवीन एवं रोचक तथ्यों का उद्घाटन करता है। कभी–कभी काल्पनिक इण्टरव्यू भी लिखे जाते हैं। अपनी कल्पना में किसी महान साहित्यकार, कलाकार अथवा राजनीतिश्र को अवतीर्ण करके उससे प्रष्न पूछना और स्वयं ही उसकी ओर से उत्तर देना बडा रोचक होता है।

डॉ. कमलेष कृत 'मैं इनसे मिला' वास्तविक इण्टरव्यू तथा राजेन्द्र यादव कृत 'चौखबः एक इण्टरव्यू' काल्पनिक इण्टरव्यू के सुन्दर उदाहरण हैं। कभी–कभी सामयिक परिस्थितियों के सन्दर्भ में वद्धजनों के विचारों से अवगत होने के लिए इण्टरव्यू लिए जाते हैं। इस प्रकार यह विधा उत्तरोत्तर लोकप्रियता प्राप्त कर रही है।

इण्टरव्यू (भेंट–वार्ता) साहित्य का उद्भव एवं विकास भेंटवार्ता अथवा इण्टरव्यू साहित्य का इतिहास उतना ही नवीन है, जितना कि पत्रकारिता का। हिन्दी इण्टरव्यू विधा के सूत्रपात का श्रेय पं. बनारसी दास चतुर्वेदी को है। सितम्बर 1931 के 'विषाल भारत' में उनका 'रत्नाकर जी से बातचीत' षीर्शक इण्टरव्यू प्रकाषित हुआ। उनका दूसरा इण्टरव्यू जनवरी 1932 के 'विषाल भारत' में प्रेमचन्दजी के साथ 'दो दिन षीर्श से प्रकाषित हुआ। इसके कुछ समय उपरान्त नवम्बर, 1993 में पं. श्रीराम षर्मा का 'कबूतर षीर्शक इण्टरव्यू प्रकाषित हुआ। सन् 1941 में 'साधना' में सत्येन्द्रजी ने एक निष्चित प्रष्नावली के आधार पर गणमान्य साहित्यकारों के इण्टरव्यू प्रकाषित किए। इनमें जगदीष प्रसाद चतुर्वेदी द्वारा भदन्त आनन्द कोसल्यायन से तथा चिरंजीलाल 'एकाकी' द्वारा महादेवी वर्मा से लिया गया इण्टरव्यू विषेश रूप से उल्लेखनीय है।

ग्रन्थ रूप में भेंटवार्ताओं के प्रथम संग्रह रूप का श्रेय बेनी माधव षर्मा कृत 'कविदर्षन' को प्राप्त है, जिसमें अयोध्यासिंह उपाध्याय, ष्यामसुन्दरदास, रामचन्द्र षुक्ल, मैथिलीषरण गुप्त सदृष साहित्यकारों के लिए गए इण्टरव्यू संग्रहीत हैं।

भेटवार्ता साहित्य का नवीन चरण डॉ. कमलेष के 'मैं इनसे मिला' षीर्शक दो भागों में प्रकाषित (1952 ई.) 22 व्यक्तियों की भेंटवार्ताओं से प्रारम्भ होता है। इन भेंटवार्ताओं में लेखक अनेक प्रयोग भी किये हैं। पहले निष्चित प्रष्नों के आधार पर व्यक्ति विषेश का परिचय देने की चेश्टा की। फिर महादेवी जी तथा निराला जी जैसे व्यक्तियों से सीधे प्रष्न पूछ पाने पर कुछ 'इम्प्रेषन' के सहारे भेटवार्ताएँ प्रस्तुत की और फिर स्वछन्दतापूर्वक बिना प्रष्नों के पूर्वाग्रह के, आवष्यकतानुसार प्रष्नों से प्रष्न निकालते हुए व्यक्ति विषेश की भेंटवार्ताएँ प्रस्तुत की। वस्तुतः यह उनकी कला के विकास के सोपान थे, जो व्यक्ति विषेश के प्रभावों से विकसित होते रहे। इस रचना के स्वरूप एवं विषेशताओं के सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं लिखा है

इन भेंटवार्ताओं का कैनवास बड़ा व्यापक है। कृतिकार की रचनाओं तक सीमित न रहकर ये उनके जीवन के विविध पक्ष अर्थात् रुचि, स्वभाव, रहन–सहन, आकृति–प्रकृति, साहित्य–सरजन आदि पर भी प्रकाष डालती है, जिससे उनकी कृतियों को समझने में सहायता मिलती है। साहित्यकारों के जीवन की अनेक रोचक घटनाओं के वर्णन से इनका ऐतिहासिक महत्व भी बढ़ गया है। हिन्दी जगत में इस ग्रन्थ को खूब सराहा गया है ।।

श्री देवेन्द्र सत्यार्थी की 'कला के हस्ताक्षर' भी इण्टरव्यू साहित्य की पुस्तकाकार कृति है, जिसमें संगीतकार, चित्रकार, अभिनेता आदि कला–धर्मज्ञों के इण्टरव्यू वर्णित हैं। कैलाष कल्पित की 'साहित्य–पाधिकायें। षरद देवी को पत्थर का लैम्प आदि भी इस सन्दर्भ में अन्य उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। इनमें संस्मरण, रेखाचित्र और निबन्ध के गुण भी आ गए है। भेंटवार्ता की एक अन्य महत्वपूर्ण कृति डॉ. रणवीर रांग्रा की 'सष्जन की मनोभूमि' (1968 । इसमें 21 षीर्शस्थ साहित्यकारों से संदर्भित भेंटवार्ताएँ संकलित हैं, जिनके माध्यम से लेखक ने पाठकों को साहित्यकारों के अवचेतन की अतुल गहराईयों से परिचित कराने का स्तुत्य प्रयास किया है। डॉ. कमलेख ने इनके महत्व के सम्बन्ध में लिखा है 'इन भेंटवार्ताओं में डॉ. रांग्रा ने अपनी जिज्ञासाऐं साहित्यकारों के सष्जन तक ही केन्द्रित की हैं और अपने तलस्पर्षी प्रष्नों द्वारा उनके सरजन की मनोभूमि तक पहुँचने की चेश्टा की है। चर्चा को कोरी तार्किकता से बचाकर रचनाकार के अन्तरंग को कुरेदने के प्रयत्न से जोड़कर उन्होंने साक्षात्कार को सष्जनात्मक वैषिश्ट्य दे दिया है। '' इनके अतिरिक्त दिनकर, विश्णु प्रभाकर माचवे, षिवदान सिंह चौहान, रामचरण महेन्द्र आदि लेखकों का भी भेंटवार्ता साहित्य की सर्जना में सहयोग रहा है। भेंटवार्ता का नवीनतम् रूप वीरेन्द्र कुमार गुप्त कृत 'समय, समस्या और हम' में देखने को मिलता है। इनमें एक ही साहित्यकार (जैनेन्द्र) से की गई भेंटवार्ताओं का संग्रह है। डॉ. सुरेष सिन्हा ने भी उपेन्द्र नाथ अष्क से की गई भेंटवार्ताओं का प्रष्नोत्तर रूप में संग्रह 'हिन्दी कहानी और फैषन' में किया है।

इन प्रमुख संग्रहों के अतिरिक्त 'नयी धारा', 'सारिका', 'धर्मयुग', 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' तथा अन्य पत्र पत्रिकाओं में निरन्तर महान विभूतियों से की गई भेंट वार्ताएं प्रकाषित होती रही हैं। अन्य में इस विधा के विकास के एक और चरण का भी उल्लेख करना उचित एवं उपयुक्त होगा और वह चरण है 'काल्पनिक भेंटवार्ता' का। राजेन्द्र यादव ने रूसी उपन्यासकार चेखब के साथ
अपनी काल्पनिक भेंट का सजीव और रोचक वर्णन किया है। लक्ष्मी चन्द्र जैन ने भगवान महावीर एक इण्टरव्यू' के नाम से काल्पनिक इण्टरव्यू लिखा है। अतः यह भी इस दिषा में किया गया महत्वपूर्ण प्रयास है। निष्चय ही इस विधा के भविश्य में और अधिक विकसित तथा कलापूर्ण बनने की पूर्ण संभावना है।

हास्य–व्यंग्य :

'व्यंग्य' षब्द अंग्रेजी भाशा के 'सैटायर' षब्द का अनुवाद है। यह मात्र हास्य नहीं है अपितु इससे पृथक एवं अधिक व्यापक है। हास्य की रचना करते समय रचनाकार का प्रयोजन मात्र परिहास पूर्ण बातों के द्वारा मनोरंजन करन होता है, जबकि व्यंग्य में हास्य पूर्ण मनोरंजन के साथ–साथ मानव की किसी विडम्बनापूर्ण स्थिति का चित्रण करना होता है। प्रभाव की दृश्टि से हँसने के अतिरिक्त मानव हृदय के अन्दर एक रात्र चुभन एवं वेदना की उत्पत्ति करता है।

हास्य–व्यंग्य, वस्तुतः वह महक है, जो समस्त विधाओं के पुश्पों को सुरभित करती है। हरिषंकर परसाई के अनुसार 'व्यंग्य विधा नहीं है– जैसे कहानी, नाटक अथवा उपन्यास । व्यंग्य का कोई निष्चित स्ट्रेक्चर नहीं है। वह निबन्ध, कहानी, नाटक आदि समस्त विधाओं में सरजित किया जाता है। इस कारण व्यंग्य स्पिरिट है। इस स्पिरिट को अंग्रेजी, संस्कृत तथा हिन्दी की पैराणिक रचनाओं में ढूंढा जा सकता है। लेकिन, आज पत्रकारिता ने हास्य–व्यंग्य को एक निष्चित विधा का रूप प्रदान कर दिया है। अब वह मात्र स्पिरिट न रहकर भावात्मक वैयक्तिक निबन्धों का रूप धारण कर चुका है। अतः यह कहा जा सकता है कि धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक अथवा सांस्कृतिक परिवेष की विसंगति अथवा विद्रूपता की हास्यात्मक अभिव्यक्ति ही हास्य व्यंग्य है।

समाज के प्रत्येक रूप, आकार, आचार, व्यवहार, व्यवस्था अथवा चिन्तन में एक अनुपात– एक प्रतिबद्धता अपेक्षित होती है। इसकी विसंगति अथवा विकृति विद्रूपता की उत्पत्ति करती है तथा यही हास्य का कारण होती है। यह विसंगति कहीं तो सहज रूप से परिलक्षित हो जाती है, जिससे मात्र हाप्य की सश्टि होती तथा कहीं इसे बौद्धिकता की तीव्र दर्षश्ट से स्पश्ट किया जाता है, जिसमें व्यंग्य की सरश्टि होती है।

हिन्दी में व्यंग्य लेखन आधुनिक युग से प्रारम्भ हुआ है। इसमें विचित्र नवीन विडम्बनाओं का प्रभाव दो रूपों परिलक्षित होता है, प्रथम तो हास्य के रूप में

द्वितीय अप्रत्यक्ष स्तर पर कटु आलोचना के रूप में। भारतेन्दु युग में बाल मुकुन्द गुप्त के 'षिव षम्भू के चिट्ठे' हिन्दी व्यंग्य साहित्य की निधि है। षिव षम्भू के रूप में लेखक का राश्ट्रीय व्यक्तित्व मुखर हो रहा है। लेखक गूँगी जनता का वास्तविक प्रतिनिधि है।

डॉ. जयकान प्रसाद खण्डेवाल के व्यंग्य 'ताजातार' साप्ताहिक एवं दैनिक ताजातार में 'चाचा नेहरू की छत्रछाया' षीर्शक के अन्तर्गत प्रकाषित हुए। इन व्यंग्यों में आगरा विष्वविद्यालय के एम. ए. हिन्दी इन्स्टीट्यूट की दुर्दषा का चित्रण करते हुए उस पर करारे व्यंग्य किये हैं। इनकी भाशा पर उर्दू षैली की छाप है।

श्री लाल षुक्ल ने 'अंगद का पाँव' षीर्शक व्यंग्य संग्रह प्रस्तुत किया है। जिसमें संस्मरण, डायरी, पत्र, षिकार यात्रा आदि षिल्पों के माध्यम से व्यंग्य प्रस्तुत किये हैं। इन व्यंग्यों में लेखक ने आधुनिक जीवन व समाज की विडम्बनाओं को चित्रित किया है।

हरिषंकर परसाई वर्तमान व्यग्यकारों में सर्वाधिक लोकप्रिय हुए हैं। उनके व्यंग्य 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' व 'धर्मयुग' आदि में छपते रहते हैं।

प्रगतिवाद ने व्यंग्य लेखकों को पैनी धार प्रदान की है। डॉ. रामविलास षर्मा व डॉ. रॉगेय राघव ने व्यंग्यपूर्ण समीक्षात्मक निबन्ध लिखे हैं जिनमें परस्पर छींटाकी भी मिलती है। कुछ प्रसिद्ध

व्यंग्यकार व उनकी रचनाएँ इस प्रकार

'बाकलमखुद'

'खरगोष के सींग'

नामवर सिंह

प्रभाकर माचवे

'सह चिंतन', 'गोबर गनेस', 'कृपाचार्य की कूटनीति', 'सबसे भले से मूढ', 'जितने पण्डे उतने झण्डे'– अमष्तराय

'राजभवन की सिगरेट दानी'– श्री नारायण चतुर्वेदी

'खजूर के पेड़– रामेष्वर नाथ तिवारी

'क्षमा कीजिए'– त्रिभुवन चतुर्वेदी

'लिफाफा देखकर'– षैलेन्द्र नाथ श्रीवास्तव

व्यंग्यात्मक व्यक्ति प्रधान निबन्धकारों में केषवचन्द्र वर्मा, षरद जोषी, रवीन्द्र नाथ त्यागी भगवती चरण वर्मा, डॉ. संसार चन्द्र इन्द्र नाथ मदान, यषपाल आदि उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी गद्य की नवीन एवं सजीव इस विधा को स्वातन्त्रोत्तर काल में विषेश विकास हुआ अनेक साहित्यकारों ने अनेकविध व्यंग्य लेख लिखकर नवीन विधा को पुश्ट किया संकलित रचनाकार

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी (सन् 1907–1979)

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी साहित्य–क्षेत्र में इतिहासकार के रूप में पदार्पण किया। आपकी 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' रूप प्रस्तुत करती है। कृति साहित्य के इतिहासकार व 'बाणभट्ट की आत्मकथा' नामक ऐतिहासिक उपन्यास लिखकर आपने गद्य षैलीकार का नूतन रूप प्राप्त किया। आलोचना क्षेत्र में भी आप उच्च चिन्तक के रूप में प्रकट हुए। किन्तु आपको अन्यतम ख्याति मिली है– निबन्धकार के रूप में। आपके ललित निबन्ध बेजोड़ हैं। आपकी लेखनी वरदायी बनकर इस क्षेत्र में दिषा निर्देष करती है। आपने दोनो प्रकार के निबन्धों (भावात्मक तथा विचारात्मक) को जो प्रौढत्व एवं सौश्ठव प्रदान किया है, तदर्थं हिन्दी–साहित्य सदैव आपका ऋणी रहेगा।

साहित्य, समाज, सभ्यता, संस्कृति और भाशा सम्बन्धी समस्याओं पर आपने ऐसे दर्जनों उत्कृश्ट निबन्ध लिखे हैं जो आपके व्यक्तित्व का संस्पर्ष पाकर बड़े सरस, रोचक और आल्हादक बन गए। आपके पाँच महत्वपूर्ण निबंध संग्रह हैं– 'अषोक के फूल', 'विचार और वितक 'कुटज', 'कल्पलता', और 'आलोक–पर्व'। ये सब हिन्दी निबन्ध साहित्य की अक्षय एवं अनुपम निधि है।

आपके निबन्धों में भाव प्रवणता, हास्य व्यंग्यात्मकता, वाग्विदग्धता तथा चिन्तन–प्रधानता का अद्भुद मिश्रण मिलता है। भाशा की दषश्टि से आपके निबन्ध बड़े प्रांजल और आकर्शक हैं। भाशा प्रवाह में अरबी फारसी तथा अंग्रेजी षब्दों से भी परहेज नहीं है। किन्तु भाशा का झुकाव विषेशतया संस्कृत षब्दावली की ओर है। प्रस्तुत संकलित निबन्ध 'षिरीश के फूल' ललित निबन्ध है। इसमें निबन्धकार का भावुक तथा विचारक रूप प्रकट होता है। यंत्र–तंत्र व्यंग्यात्मकता भी बड़ी मार्मिक है। एक षिरीश जैसे विषिश्ट पुश्प के माध्यम से लेखक पाठकों को बड़ी रमणीय साहित्यिक यात्रा पर ले जाता है और नानाविध अनुभूतियाँ कराता है। भाशा–षैली की दश्टि से यह निबन्ध, अत्यधिक भव्य, रोचक एवं साहित्यिक है।

बाबू गुलाबराय

(सन् 1888–1963 ई0)

2 ध्फर निराषा

बाबू गुलाब राय षुक्ल–युगीन (उत्तर– द्विवेदी–युग) निबंधकारों में प्रमुख स्थान रखते हैं। अपने भावात्मक तथा विचारात्मक– दोनो प्रकार के निबंध प्रचुर मात्रा में लिखे हैं। गुण और मात्रा की दृश्टि से इस क्षेत्र में आपका योगदान स्तुत्य है। आपके महत्वपूर्ण निबंध–संग्रह क्यों', 'मेरी असफलताएँ', 'प्रबन्ध प्रभाकर' 'ठलुआ क्लब', 'मेरे निबन्ध', 'अध्ययन और आस्वाद' आदि हैं। 'मेरी असफलताएँ' संग्रह में 22 निबंध हैं जिनमें प्रायः सभी आत्मकथात्मक प्रकार के हैं। उनमें हास्य–व्यंग्य

का सम्मिश्रण बड़ी ही रोचकता ला देता है। प्रस्तुत संकलित निबंध 'मेरी दैनिकी का एक पृश्ठ' उक्त संग्रह से ही उद्धृत है। यह आत्मकथात्मक प्रकार का निबंध है। लेखक ने आप–बीती को कलात्मक ढंग से कहा है। व्यंग्यात्मकता के कारण इसमें बहुत कुछ कह डालने का प्रयास है। दैनिक जीवन–यापन का बड़ा ही सूक्ष्म विष्लेशण करके लेखक ने अपने निरीक्षक परीक्षण की षक्ति का आभस करा दिया है। भाश–षैली की दृश्टि से तो यह निबंध अत्यधिक प्रौढ, प्रांजल और आकर्शक है। लेखक बीच–बीच में उदाहरण देकर उसमें रोचकता एवं प्रभावात्मकता का संचार कर दिया है।

आपके निबन्धों में विशय की विविधता के साथ ही साथ षैली की विविधता भी है। आपने भावात्मक निबंधों में व्यक्तित्व का संस्पर्ष, हास्य–व्यंग्य, सूक्ति उद्धरण, कहावतों–मुहावरों का प्रयोग आदि विषेशताओं के कारण अद्‌भुद आकर्शण है। आपकी बहुमुखी प्रतिभा और अगाध ज्ञान का परिचय देने वाला आपका निबन्ध्‍ा–साहित्य ही है।

बाबू गुलाबराय जी मूलतः अध्यापक और विचारक थे। दर्षनषास्त्र में अच्छी गति होने के कारण तर्क–वितर्क का सहारा लेकर विशय–प्रतिपादन करते थे। षास्त्रीय विशयों पर सैद्धान्तिक निबन्ध भी आपने अच्छी संख्या में लिखे हैं। इस प्रकार अधि‍ाकांष निबन्ध छात्र के लिये बडे उपयोगी सिद्ध हुए राहुल सांकृत्यायन (सन् 1893–1963) राहुल जी कई भाशाओं के मर्मज्ञ तथा अनेक विशयों के ज्ञाता थे। समाजषास्त्र, इतिहास, साहित्य, दर्षन, पुरातत्व आदि विशयों पर विपुल साहित्य लिखकर आपने हिन्दी–साहित्य को जो बहुमूल्य योगदान दिया है, वह ष्लाघ्य है। आप एक सषक्त गद्यकार के रूप में साहित्य में प्रकट हुए और कई गद्य विध‍ाओं में अपनी लेखनी चलाकर अपनी सामर्थ्य का परिचय दिया। निबंध, संस्मरण, यात्रा, रिपोर्ताज आदि क्षेत्रों में आपने काफी लिखा और अच्छा लिखा। आपकी उल्लेखनीय गद्य कृतियाँ हैं– यात्रा निबन्धावली, यात्रा के पन्ने, बचपन की स्मृतियाँ, तुम्हारी क्षय और घुमक्कड षास्त्र । आपकी गद्य रचनाओं की भाशा–षैली सजीव, प्रवाहपूर्ण और कलात्मक है।

प्रस्तुत संगरहीत गद्य रचना, 'अथतो घुमक्कड़ जिज्ञासा' रिपोर्ताज है जो 'घुमक्कड़–षास्त्र' से लिया गया है। इसमें लेखक ने स्वानुभूति की साहित्यिक आख्या (रिपोर्ट) प्रस्तुत की है। इसमें देषाटन–सम्बन्धी चिन्तन की गहनता व्यक्त हुयी है। लेखक ने चतुर्दिक भ्रमण को बड़ा महत्व दिया है। समाज और देष की प्रगति के लिए देषाटन बड़ा महत्त्वपूर्ण होता है। लेखक स्वयं बड़ा घुमक्कड़ रहा है। लेखक ने घूम–घूम कर जो अनुभव प्राप्त किए, उनसे हिन्दी–साहित्य को

कुछ नयी सामग्री प्राप्त हुई। प्रस्तुत रिपोर्ताज की भाशा–षैली विशय के अनुरूप है। रोचकता, सरसता और प्रवाहात्मकता उसके विषिश्ट गुण हैं।

इकाई– 10 दिनकर की डायरी (डायरी), मुंशी जी (संस्मरण)

रामधारी सिंह दिनकर

(सन् 1908 – 1974 0)

राश्ट्रकवि दिनकर जहाँ एक ओर अपने जीतापूर्ण काव्य ग्रन्थों के लिए जाने जाते हैं वहीं उनका सषक्त गद्य भी कम जतमम नहीं है। दिनकर की सभी रचनाओं की सूची आने पर यह स्पश्ट पता चल जाता है कि दिनकर कवि की अपेक्षा गद्यकार के रूप में अधिक प्रसिद्ध न सही परन्तु सषक्त अवष्य हैं। डॉ. रामचन्द्र तिवारी के षब्दों में 'रामधारी सिंह दिनकर निसर्गतः भाव की आर्द्रता और विचार की उश्मा से पण्डित एक छाया, धूप–छाँह या एक स्वप्निल यथार्थ हैं। उनकी प्रसिद्धि कविरूप में अधिक है, किन्तु उनकी गद्यकृतियाँ कम महत्वपूर्ण नहीं है। उन्होंने निबन्ध, आलोचना, संस्मरण, यात्रावष्तान्त, लघुकथा, गद्य, गीत आदि कई गद्य विधाओं को समृद्ध किया है।

आपकी गद्यकृतियों में 'मिट्टी की ओर', 'अर्द्ध नारीष्वर', 'रेती के फूल' 'वेणुवन', 'धर्म, नैतिकता और विज्ञान', 'वट पीपल', 'साहित्यमुखी', 'हमारी सांस्कृतिक एकता', 'आधुनिक बोध', 'चेतना की षिखा', 'भारत की संस्कृति की कहानी', 'काव्य की भूमिका', 'पन्त प्रसाद और मैथिलीषरण गुप्त', 'उजली आग', 'मेरी यात्राएँ' 'देष–विदेष', 'संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ', 'दिनकर की डायरी' पुस्तके प्रकाषित हैं। इनमें 'उजली आग' तो लघु कथा संग्रह है। इसमें गद्यगीत की पद्धति अपनाई गयी है। 'षुद्ध कविता की खोज', 'काव्य की भूमिका' और 'पंत प्रसाद और मैथिलीषरण' में आप आलोचक के रूप में उभर कर सामने आये हैं। संस्मरण लेखक के रूप में 'संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ', 'लोकदेव नेहरू' और 'वट पीपल' में भी कुछ संस्मरण दिये हुए हैं। आपकी सबसे अधिक ख्याति 'संस्कृति के चार अध्याय' नामक पुस्तक के आधार पर हुई है। इसमें आपने भारतीय संस्कृति के मूल तत्वों को ऐतिहासिक विकास करके अपनी अनुसंधानिक प्रवर्षन का परिचय दिया है। देष विदेष में दिनकर जी की 1955 में की गयी योरोप की यात्राओं के वष्तान्त हैं। इसी प्रकार 'मेरी यात्राएँ' में भी बड़े रोचक, सरस और आकर्शक यात्रावष्त दिये गये हैं।

संकलित रचना 'दिनकर की डायरी' नामक पुस्तक से ली गयी है। इस रचना में जहाँ तिथिक्रम से कुछ भावात्मक संवेग अभिव्यक्त हुए हैं, वहीं लेखक की परिपक्व विचार षैली के भी दर्षन होते हैं। विभिन्न स्थानों की यात्राएँ करते समय दिनकर ने कहाँ क्या–क्या देखा, उसका सजीव वर्णन इस डायरी में विद्यमान है।

दिनकर जी ने इस रचना की भूमिका में यह स्वीकार किया है कि इस डायरी में रिपोर्ताज जैसी पत्रकारिता की विधा के भी लक्षण दिखायी देते हैं। 2 जनवरी 1961 से 31 दिसम्बर 1972 के बीच के अन्तराल अर्थात् 12 वर्श की अवधि में दिनकर जी ने जो डायरियाँ लिखीं हैं, वे इस पुस्तक में संग्रहीत होकर 1973 ई. में हिन्दी जगत के समक्ष आयीं। दिनकर जी के विधि विशयों से सम्बन्धित दर्षश्टकोण और विचारधारा का भी परिचय मिल जाता है। इस कालखण्ड में लेखक की साहित्यिक गतिविधियों के विवरण भी इस पुस्तक में सँजोये गये हैं। इस पुस्तक में अनेक स्थलों पर 'उर्वषी' की रचना प्रक्रिया के विशय में दिनकर जी ने बड़ी महत्वपूर्ण एवं रहस्यमयी बातों का उल्लेख किया है और इसी आधार पर प्रस्तुत कृति एक बहुमूल्य दस्तावेज बन गयी है। कुछ साहित्यकारों के विशय में भी लेखक ने अपनी राय इन डायरियों में व्यक्त की है। 12.2.1962 का लिखी डायरी में निराला के विशय में उनकी निम्न टिप्पणी दषटव्य है

'निराला जी थे औघड़ फकीर । जीवन भर उनका रास्ता गड़बड़ रहा। मगर मरकर तो इस फकीर ने सबको मार डाला। निराला जी पर जनता की जो भक्ति उमड़ी है, वह अन्ततः साहित्य को ही अर्पित भक्ति है।'

दिनकर जी की गद्य भाशा बड़ी ललित और सरल होती है। भावात्मक लेखक के समय वह नाचती, थिरकती, स्फुरण पैदा करती है और विवेचन के समय उच्च साहित्यिक, संस्कृतनिश्ठ होकर पाठक की बुद्धि को झकझोरने में पूर्ण सक्षम होती है।

सियारामषरण गुप्त

(सन! 1895 – 1963 ई०)

सियारामषरण गुप्त ने बहुत कम संख्या में निबंध लिखकर भी हिन्दी के अच्छे निबंधकारों में स्थान बना लिया है। आप स्वभाव से कवि तथा विचारक थे। वस्तुतः आपके कुछ निबंध संस्मरणात्मक हैं। वे संस्मरण गद्य–विधा के अभिन्न अंग माने जा सकते हैं। आपके 28 निबंध

का संकलन 'झूठ–सच' के नाम से सन 1939 ई० में प्रकाषित हुआ था। इनमें लेखक का संवेदनषील व्यक्तित्व अभिव्यक्त हुआ है। अभिव्यक्ति को दर्षश्ट से इनमें से कुछ कहानी और संस्मरण और गद्य–काव्य के निकट पहुँच जाते हैं। प्रस्तुत संकलित निबंध 'मुंषीजी इसी संग्रह से संग्रहीत है, जो संस्मरण है। आपके अधि ाकांष निबंध विचारात्मक हैं। किन्तु अधिक आकर्शक एवं रोचक हैं भावात्मक निबंध ा। अधिकांष निबंधों में प्रसाद–षैली अपनाई गई है. और कुछ में व्यंग्य षैली भाशा बड़ी सहज, सीधी–सादी और प्रवाहमय है। भाशा–षैली की आकर्शकता के कारण प्रत्येक पाठक तन्मय होकर निबंधों का आनंद लेता है। विचार–क्षेत्र में गुप्त जी गाँधीवादी थे। नैतिक मूल्यों के प्रति उनकी सहज आस्था थी और जीवन का

षाष्वतमूल्य स्वीकार करते थे सत्य, प्रेम तथा अहिंसा में। परिणामस्वरूप आपके निबंधों में किसी न किसी रूप में गाँधीवादी विचारधारा समाविश्ट हो गई है मुंषीजी ' षीर्शक गद्य–रचना वस्तुतः संस्मरण है। लेखक अपने जीवन में मुंषीजी का सानिध्य प्राप्त करता है और उनके जीवन में जिन पक्षों को भलीभाँति देखता है, उन्हें बड़ी ही कलात्मक षैली में प्रस्तुत करता है। यह भावात्मक संस्मरण, निःसंदेह, पाठक को रसमरन कर देने में सक्षम एवं समर्थ है। भाशा–षैली पर लेखक का कैसा अधिकार है, यह हमें स्वतः ज्ञात हो जाता है। उसकी लेखनी का जादू किसे अभिभूत नहीं कर लेता? इस क्षेत्र में उन्होंने कमाल की प्रतिभा पाई थी।

डॉ० पदमसिंह षर्मा 'कमलेष'

(सन् 1915 – 1974 ई०)

डॉ० पदमसिंह षर्मा 'कमलेष' एक प्रसिद्ध समीक्षक थे। आप स्वभाव से कवि और विचारक थे। गद्य की नवीनतम विधा 'भेंट–वार्ता के क्षेत्र में आपका उच्चतम स्थान है। आपने साहित्य में स्थान बनाने के लिए संघर्श और कठोर परिश्रम किया था। आपने जीविकोपार्जन के लिए प्रारम्भ में हॉकर के रूप में कार्य किया फिर कुछ समय तक प्राइमरी तथा मिडिल स्कूलों में अध्यापन कार्य किया 1940–41 में बम्बई हिन्दी विद्यापीठ के प्रधानाचार्य रहे। सन् 1942 में आप आगरा आ गये और यहाँ पर नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा संचालित हिन्दी साहित्य विद्यालय के लगभग आठ वर्श तक आचार्य रहे। सन् 1949 से 1952 तक आगरा कॉलेज के हिन्दी विभाग में प्राध्यापक रहे। 1962 में कुरुक्षेत्र विष्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में रीडर तथा 1973 में प्रोफेसर नियुक्त हुए। इसी पद पर कार्य करते हुए 5 फरवरी, 1974 को आपका स्वर्गवास हो गया।

डॉ० कमलेष जहाँ सफल कवि, समीक्षक, सम्पादक, अनुवादक थे वहीं कुषल प्राध्यापक और षोध–निर्देषक भी थे। आपके कई संग्रह प्रकाषित हो चुके हैं जिसमें धरती पर उतरी ' 'दिग्विजय', 'एक युग बीत गया' आदि प्रसिद्ध काव्य रचनायें हैं। इनके ग्यारह समीक्षा ग्रन्थ प्रकाषित हैं, जिनमें 'हिन्दी गद्यकाव्य', 'निराला काव्य–समीक्षा', 'राधिकारमण प्रसाद सिंह व्यक्तित्व और कृतित्व', 'प्रेमचन्द्र और उनकी साहित्य–साधना', 'गुजराती और उसका साहित्य' आदि उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। गुजराती और अंग्रेजों की कई रचनाओं का अनुवाद बड़ी कुषलता से आपने हिन्दी में किया है।

डॉ. कमलेष की भेंट वार्ताएं 'मैं इनसे मिला' दो भागों में संगरहीत है। प्रस्तुत संग्रह में संकलित 'श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला' षीर्शक भेंट–वार्ता में लेखक ने निराला से भेंट का यथार्थ चित्रण किया है। इस चित्रण में प्रष्नोत्तर कला, वर्ण्य

विशय, औपचारिकतां, व्यावहारिक ज्ञान आदि की स्पश्ट झलक मिलती है। भेंट वार्ता काल्पनिक भी हो सकती है, किन्तु यह भेंट वार्ता बड़ी स्वाभाविक और यथार्थ है। हिन्दी साहित्य में इसका अनुपम स्थान है। लेखक ने बड़ी कुषलता से प्रष्नोत्तर के माध्यम से उनकी चिन्तन–धारा को समझकर उसका अंकन किया है। भेंट–वार्ता–साहित्य का यह सुन्दर उदाहरण है।

पं० हरिषंकर परसाई

(सन् 1942 ई०)

इस युग के हास्य–व्यंग्य निबन्धकारों में पं० हरिषंकर परसाई का नाम विषेश उल्लेखनीय है। वैसे आप कहानीकार, उपन्यासकार और नाटककार भी हैं। आपकी सभी प्रकार की रचनायें मनोरंजन करने के साथ–साथ युगीन जीवन–संस्थितियों की प्रखर आलोचना भी प्रस्तुत करती है। आपकी हास्य–व्यंग्य–प्रतिभा पूर्ण स्वच्छन्दता एवं स्वतंत्रता के साथ निबन्धों में विकसित हुई है। अत्यन्त मार्मिक एवं प्रांजल भाशा, प्रवाहपूर्ण आकर्शक षैली और तीक्ष्ण व्यंजना के कारण आपके निबन्ध बड़े सरस, रोचक और हृदयग्राही हो गये हैं। प्रत्येक निबन्ध किसी व्यक्ति प्रसंग से प्रारम्भ होकर बड़ी आत्मीय षैली में व्यापक परिवेष में प्रवेष कर जाता है और आत्मपरकता का परिधान धारण करता हुआ देष और समाज की सूक्ष्म समीक्षा प्रस्तुत करता

परसाई जी के दो उत्कृश्ट निबन्ध–संग्रह प्रकाषित हो चुके हैं। प्रस्तुत संकलित निबन्ध–' आँगन में बैंगन' से लेखक के रचना–कौषल पर सम्यक प्रकाष पड़ता है। विशयवस्तु, भाशा–षैली और व्यंजना पाठकों के सम्मुख आकर लेखक की क्षमता का बोध कराती है। अभिव्यंजना कितनी कलात्मक है, कितनी आत्मीय है और है कितनी स्वच्छन्द एवं स्वतन्त्र, यह सब देखते ही बनता है। निबन्ध पढ़ते समय क्या मजाल कि पाठक का चित्र इधर से उधर हो जाये। वह भावविभोर होकर बेसुध हो जाता है। यही निबन्धकार की महान् सफलता है।

उपर्युक्त लेखकों की प्रमुख नवीन गद्य विधायें लिखी जा रही हैं

1. षिरीश के फूल

(ललित निबन्ध) हजारी प्रसाद द्विवेदी

जहाँ बैठ के लेख लिख रहा हूँ उसक आगे, पीछे, दाएँ, बाएँ, षिरीश के अनेक पेड़ हैं। जेठ की जलती धूप में, जब धरित्री – निर्धूम अग्निकुण्ड बनी हुई थी, षिरीश नीचे से ऊपर तक फूलों से लद गया था। कम फूल इस प्रकार की गरमी में फूल सकने की हिम्मत करते हैं। कर्णिकार और आरग्वध (अमलतास) की बात मैं भूल नहीं रहा हूँ। वे भी आस–पास बहुत हैं। लेकिन षिरीश के साथ आरग्वध की तुलना नहीं की जा सकती। वह पन्द्रह बीस दिन के लिए फूलता है, बसन्त ऋतु

के पलाष की भाँति । कबीरदास को इस तरह पन्द्रह दिन के लिए लहक उठना पसन्द नहीं था। यह भी क्या कि दस दिन फूले और खंखड के खंखड़–दिन दस फूला फूलि के खंखड भवा पलास? ऐसे दुमदारों से तो लँडरे भले । फूल है षिरीश । बसन्त के आगमन के साथ लहक उठता है, अशाढ़ तक तो निष्चित रूप से मस्त बना रहता है। मन रम गया तो भरे भादों में भी निर्घात फूलता रहता है। जब ऊमस से प्राण उबलता रहता है और लू से हृदय सूखता रहता है, एकमात्र षिरीश कालजयी अवधूत की भाँति जीवन की अजेयता का मन्त्र–प्रचार करता रहता है। यद्यपि कवियों की भाँति हर फूल–पत्ते देखकर मुग्ध होने लायक हृदय विधाता ने नहीं दिया है, पर नितान्त ठूंठ भी नहीं हूँ। षिरीश के पुश्प मेरे मानस में थोड़ा हिल्लोस जरूर पैदा करते हैं।

षिरीश के वष्क्ष बड़े छायादार होते हैं। पुराने भारत का रईस जिन मंगल–जनक वष्क्षों को अपनी वष्क्ष–वाटिका की चाहरदीवारी के पास लगाया करता था, उनमें एक षिरीश भी है (रहत्संहिता 55щ3)। अषोक, अरिश्ट, पुन्नाग और षिरीश के छायादार और घन मसरण हरीतिमा से परिवेश्टित वष्क्ष–वाटिका जरूर बड़ी मनोहर दिखती होगी। वात्स्यायन ने (कामसूत्र बताया है कि वाटिका के सघन छायादार वष्क्षों की छाया में ही झूला (प्रेखा दोला) लगाया जाना चाहिए। यद्यपि पुराने कवि बकुल के पेड़ में ऐसी दोलाओं को लगा देना चाहते थे, पर षिरीश भी क्या बुरा है। डाल इसकी अपेक्षाकृत कमजोर जरूर होती है, पर उसमें झूलने वालियों का वनज भी तो बहुत ज्यादा नहीं होता। कवियों की यही तो बुरी आदत है कि वनज का एकदम ख्याल नहीं करते। मैं तुन्दिल नरपतियों की बात नहीं कह रहा हूँ, वे चाहें तो लोहे का पेड बनवा लें!

षिरीश का फूल संस्कृत–साहित्य में बहुत कोमल माना गया है। मेरा अनुमान है कि कालिदास ने यह बात षुरू–षुरू में प्रचार की होगी उनका कुछ इस पुश्प पर पक्षपात था (मेरा भी है) कह गये हैं, षिरीश पुश्ट केवल भौरों के पदों का कोमल दबाव सहन कर सकता हैं, पक्षियों का बिल्कुल नहीं पद सहेत भ्रमरस्य पेलवं षिरीशपुश्पं न पुनः पतत्रिणाम्।' 'अब मैं इतने बड़े कवि की बात का विरोध कैसे करूँ? सिर्फ विरोध करने की हिम्मत न होती तो भी कुछ कम बुरा नहीं था, यहाँ तो अच्छा भी नहीं है। खैर मै दूसरी बात कह रहा था। षिरीश के फूलों की कोमलता देखकर परवर्ती कवियों ने समझा कि उसका सब–कुछ कोमल है। यह भूल इसके फल इतने मजबूत होते हैं कि नये फूलों के निकल आने पर भी स्थान नहीं छोड़ते। जब तक नये फल–पत्ते मिलाकर धकियाकर उन्हें बाहर नहीं कर देते, तब तक वे डटे रहते हैं। बसन्त के आगमन के समय जब सारी वनस्थली पुश्प–पत्र से मर्मरित होती रहती है, षिरीश के पुराने फल बुरी तरह खड़खड़ाते

रहते हैं। मुझे इनको देखकर उन नेताओं की याद आती जो किसी प्रकार जमाने का रूख नहीं पहचानते और जब तक नई पौध के लोग उन्हें ध क्का मारकर निकाल नहीं देते, तब तक जमे रहते मैं सोचता हूँ कि पुराने की यह अधि ाकार–लिप्सा क्यों नहीं समय रहते सावधान हो जाती? जरा और मृत्युः ये दोनों ही जगत के अपरिचित और अतिप्रामाणिक सत्य हैं। तुलसी ने अफसोस के साथ इनकी सच्चाई पर मुहर लगाई थी– थरा की प्रमान यही तुलसी जो फरा से झरा वो 'बरा सो बुताना!' मैं षिरीश के फलों को देखकर कहता हूँ कि क्यों नहीं फलते ही समझ लेते बाबा, कि झड़ना निष्चित है। सुनता कौन है? महाकाल देवता सपासप कोड़े चला रहे हैं, जीर्ण और दुर्बल झड़ रहे हैं, जिनमें प्राणकण थोड़ा भी उर्ध्वमुखी है, वे टिक जाते हैं। दुरंत प्राणध और सर्वव्यापक कालाग्नि का संघर्श निरन्तर चल रहा है। मूर्ख समझते हैं कि जहाँ बने वहीं देर तक बने रहें तो काल देवता की आँख बचा जायेंगे। भेले हैं । हिलते डुलते रहो, स्थान बदलते रहो, आगे की ओर मुँह किये रहो तो कीड़े की मार से बच भी सकते हो। जमे कि मरे। एक–एक बात मुझे मालूम होता है किवह षिरीश के अद्‌भुत अवधूत है। दुःख हो या सुख, वह हार नहीं मानता व ऊधो का लेना, न माधो का देना। जब धरती पर आसमान जलते रहते. हैं तब भी यह हजरत न जाने कहाँ से अपना रस खींचते रहते हैं। मौज के आठों याम महत रहते हैं। एक वनस्पतिषास्त्री से मुझे बताया है कि यह उस श्रेणी का पेड हैं जो वायुमण्डल से अपना रस खींचता है। जरूर खींचता होगा। नहीं तो भयंकर लू के समय इतने कोमल तंतुजाल और ऐसे सुकुमार केसर को कैसे उगा सकते हैं। अवधूतों के मुँह से ही संसार की सबसे सरल रचनायें निकली हैं। कबीर बहुत कुछ इस षिरीश के समान ही थे, मस्त और बेपरवाह, पर सरल और मादक । कालिदास भी जरूर अनासक्त योगी रहे होंगे। षिरीश के फूल फक्कड़ाना मस्ती से ही उपज सकते हैं और 'मेघदूत' का काव्य उसी प्रकार के अनासक्त अनाबिल उन्मुख हृदय में उमड़ सकता है। जो कवि अनासक्त नहीं रह सका, जो फक्कड़ान नहीं बन सका, जो किये–कराये का लेखा–जोखा मिलने में उलझ गया वह भी क्या कवि है? कहते हैं कर्णट–राज की प्रिया विज्जिकादेवी ने गर्वपूर्वक कहा था कि एक कवि ब्रह्म थे, दूसरे बाल्मीकि और तीसरे व्यास। एक ने वेदों को दिया, दूसरे ने रामायण को और तीसरे ने महाभारत की। इनके अअतिरिक्त और कोई यदि कवि होने का दावा करे तो मैं कर्णाट–राज की प्यारी रानी उसके सिर पर अपना बायाँ चरण रखती हूँ– तेषां मूर्हिन ददामि वामचरण कार्णाट–राजप्रिया? मैं जानता हूँ कि इस उपालम्भ से दुनिया का कोई कवि हारा नहीं है पर इसका मतलब यह नहीं कि कोई लजाये नहीं तो उसे डाँटा भी न जाय। मैं कहता हूँ कि कवि बनना है तो मेरे दोस्तोय

तो फक्कड़ बनो। षिरीश की मस्ती की ओर देखो। लेकिन अनुभव ने मुझे बताया है कि कोई किसी की सुनता नहीं। मरने दो!

कालिदास बजन ठीक रख सकते थेय क्योंकि वे अनासक्त योगी की स्थिति प्रज्ञता और विदग्ध –प्रेमी का हृदय पा चुके थे। कवि होने से क्या होता है? मैं भी छन्द बना लेता हूँ और तुक जोड़ लेता हूँ और कालिदास भी छन्द बना लेते थे– तुक भी जोड़ ही सकते होंगे – इसलिए हम दोनों एक श्रेणी के नहीं हो जाते। पुराने सहृदय ने किसी ऐसे ही दावेदार को फटकारते हुए कहा था– 'वयमपि कवया कवयस्ते कालिदासाद्य।' मैं तो मुग्ध और विस्मय–विमूढ होकर कालिदास के एक–एक ष्लोक को देखकर हैरान हो जाता हूँ। अब इस षिरीश के फूल का ही एक उदाहरण लीजिए। षकुन्तला बहुत सुन्दर थी। सुन्दर होने से ही क्या कोई सुन्दर हो जाता है? देखना चाहिए कि कितने सुन्दर हृदय से वह सौन्दर्य में डुबकी लगाकर निकला है। षकुन्तला कालिदास के हृदय से निकली थी। विधाता की ओर से कार्पण्य नहीं था, कवि की ओर से भी नहीं। राजा दुश्यन्त भी अच्छे–भले प्रेमी थे। उन्होंने षकुन्तला का एक चित्र बनाया थाय लेकिन रह–रह कर उनका मन खोज उठता था। उहूँ, कहीं–न–कहीं कुछ छूट गया है। बड़ी देर के बाद उन्हें समझ में आया कि षकुन्तला के कानों में वं उस षिरीश पुश्प को देना भूल गए हैं, जिसके केसर गण्डस्थल तक लटके हुए थे और रह गया है षरच्चन्द्र की किरणों के समान कोमल और षुभ मृणाल का हार – कृतं न कर्णातिपतबन्ध् ानं सखे षिरीशमागण्डविलम्बिकेसरम् ।

न वा षरच्चन्द्रमरीचिकोमल मृणालसूत्र रचितं स्तानान्तरे e

कालिदास ने यह ष्लोक न लिख दिया होता तो मैं समझता कि वे भी बस और कवियों की भाँति कवि थे, सौन्दर्य पर मुग्ध, दुःख से अभिभूत, सुख से गद्गद् ! पर कालिदास सौन्दर्य के बाह्य आवरण को भेदकर उसके भीतर तक पहुँच सकते थे, दुःख हो कि सुख वे अपना भाव – रस अनासक्त कृशी – बाला की भाँति खींच लेते थे जो निर्दलित ईक्षुदण्ड से रस निकाल लेती है। कालिदास महान् थे, क्योंकि वे अनासक्त रह सके थे। कुछ इसी श्रेणी की अनासक्ति आधुनिक हिन्दी कवि सुमित्रानन्दन पन्त में है। कविवर रवीन्द्र में यह अनासक्ति थी। एक जगह उन्होंने लिखा 'राजोद्यान का सिंहद्वार कितना ही अभ्रभेदी क्यों न हो, उसकी षिल्प–कला कितनी ही सुन्दर क्यों न हो, वह यह नहीं कहता कि हममें आकर ही सारा रास्ता

समाप्त हो गया। असल गन्तव्य स्थान उसे अतिक्रम करने के बाद ही है। यही बताना उसका कर्तव्य है।' फूल हो या पेड़, वह अपने आप में समाप्त नहीं है। यह किसी अन्य वस्तु को दिखाने के लिए उठी हुई अंगुली है। वह इषारा है।

षिरीश–तरु सचमुच पक्के अवधूत को भाति मेरे मन में ऐसी तरंगे जगा देता है जो ऊपर की ओर उठती रहती है। इस चिलकती धूप में इतना सरस वह कैसे बना रहता है? क्या वे बाह्य परिवर्तन– धूप, वर्शा आँधी, लू–अपने–आप में सत्य नहीं है? हमारे देष के ऊपर से जो याह मार–काट, अग्निदाह, लूट–पाट, खून–खच्चर का बवंडर बह गया है इसके भीतर भी क्या स्थिर रहा जा सकता है? षिरीश रह सका है अपने देष का है कि ऐसा क्यों सम्भव हुआ। क्योंकि षिरीश भी बूढ़ा रह सका था। क्यों? मेरा मन पूछता अवधूत है और अपने देष का वह बूढ़ा भी अवध ूत था। षिरीश वायुमण्डल से रस खींचकर इतना कोमल और इतना कठोर है। गाँधी भी वायुमण्डल से रस खींच कर इतना कोमल और इतना कठोर हो सका था। मैं जब–जब षिरीश की ओर देखता हूँ तब–तब हूक उठती है–हाय वह अवध ूत आज कहाँ है?

इकाई – 11 सूर्यकांत त्रिपाठी' निराला' (भेंट–वार्ता),

कवि लेखक और दार्षनिक प्रायः इस बात के लियेबदनाम हैं कि वे कल्पना के आकाष में विचरा करते हैं, उनके पैर चाहे जमीन पररहें, किन्तु निगाह आसमान की ओर रहती है और वे झोपड़ियों में रहकर भी ख्वाबमहलों के देखा करते हैं। न्याय – षास्त्र के कर्त्ता अक्षपाद गौतम एक दिनविचार करते–करते एक गड्ढे में गिर पड़े। भगवान ने दया करके उनके पैरों मेंआँखे दे दी थी, इसलिये कि वे उपर को आँख किये हुए भी पैर के पास गढ़ों औरकांटों को देख सकें। तभी से उनका नाम अक्षपाद हो गया। आजकल केदार्षनिकों को ईष्वर में विष्वास नहीं, नहीं तो षायद उनके पैरों में भी आँखों केजोड़े निकल आते। आजकल पैरों की तो क्या सर की आँखों के भी लाल पड़ेरहते हैं। अक्षपाद तो अतीत काल की विभूति थे। किन्तु आधुनिक काल में कुछलोग तो अवष्य अपने चरित्र से दुनिया की धारणा को सार्थक करते रहते हैंवास्तव में कोई अकारण बदनाम नहीं होता ऐसे लोग दुनियों से बेखबर रहकरतीन लोको से न्यारी अपनी मथुरा बसावा करते हैं और अकबर के षब्दों में सारीउम्र होटलों में गुजार कर (बढिया होटलों में नहीं) मरने की अस्पताल चले जातेहैं। इनमें से कुछ लोग तो ऐसे होते हैं जिनका अन्तः (घर) और बाह्य (सामाजिकजीवन) एक सा है। उनको न बच्चों की टें–टें–पे–पें से काम और न दुनिया केकरुण क्रंदन से कोई मतलब, बेटा का भूकम्प हो, चाहे बंगाल का दुर्भिक्ष, राश्ट्रबिगड़े या बने उनको अपने सोटे–लँगोटे में मस्त पड़े रहना, न वे ऊधों के लेन में

रहते हैं और न माधो के देन में। वे अपनी कल्पना के कल्पतरु के नीचे बैठकर अपनी विष्वामित्री सृश्टि रचा करते हैं, सो भी जब मौज आई, नहीं तो वे कल्पना करने का भी कश्ट नहीं करते।

कुछ लोग ऐसे हैं जिनको घर की तो परवाह नहीं बच्चों के लिये दवा हो या न हो घर में चूहे नहीं आदमी भी एकादषी करते हो बेचारी धर्म–पत्नी नैयायिकों के अनुमान का प्रत्यक्ष आधार स्वरूप आद्रेन्धन (गीलेईंधन) और अग्नि के संयोग से उत्पन्न धुएँ से अग्निहोत्री ऋशियों की भाँति आरक्तलोचन (धुएँ के अतिरिक्त क्रोध ा भी) बनी रहती हो, किन्तु उन्हें सभाओं के संचालन और नेतापन से काम। घर में उनके पैर, जल में पड़ी मछली की भांति, फटफटाया, करते हैं, किन्तु बलिहारी कन्ट्रोल की उनको भी आटे दाल का भाव आलंकारिक रूप से नहीं, बल्कि उसके षब्दार्थ में भी मालूम पड़ गया है। मेरे एक दार्षनिक मित्र (श्री पी0 एम0 भम्मानी) उस रोज षक्कर का पारिवारिक अर्थषास्त्र बतला रहे थे। मुझे उन्हें चीनी की समस्या से विचलित होते देखकर आष्चर्य हुआ। उन्होंने कहा भाई, यह कन्ट्रोल मुझे भी आसमान से नीचे उतार लाया और मैं भी अब नौन–तेल– लकड़ी के चक्कर में पड़ गया हूँ। (ईष्वर को धन्यवाद है कि अब कन्ट्रोल की बाधा नहीं रही) ।

मैं उपर्युक्त गरहत्यागी वर्ग की गगन चुम्भी सीमा को स्पर्ष कर लेता हूँ, किन्तु पारिवारिकता के क्षेत्र से बाहर न आ सका हूँ। पारिवारिक जीवन में सामाजिक जीवन का समन्वय करना कभी–कभी बड़ी समस्या हो जाती है। ऐसा हाल प्रायः बहुत–से लेखकों का होगा। परिवार में जन्म लेकर उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता। कुछ लोग परिवार में जन्म ले लेते हैं, किन्तु परिवार बनाने का पाप अपने उपर नहीं लेते हैं। ऐसे व्यक्ति यदि वे अगला जन्म धारण करेंगे तो टेस्ट–ट्यूब बेबीज के रूप में प्रकट होगें । विज्ञान और समाजषास्त्र निश्पारिवारिकता की ओर जा रहा, किन्तु हम भारतीय संस्कृति के बंधन में पले हैं, पारिवारिकता के बन्धन के बाहर नहीं जा सकते हैं– उसमें गुण भी हैं और दोश भी । षुद्ध दूध में भी तो 60 प्रतिषत से अधि क पानी होता है। उस पानी के बिना षायद वह दूध हज्म भी न हो। अबोध षिषुओं के तो गले भी न उतरे, पाप पुण्य दिन–रात की भांति पारिवारिक जीवन भी गुण दोश–मय है। दोशों की मैं कमी अवष्य चाहता हूँ, किन्तु उस वैद्य की भांति नहीं हूँ जो ऐसी दवा दे जिससे न मर्ज रहे और न मरीज । अस्तु इसी पारिवारिकता –परायण और सामाजिकता के लिए मनोरथ षील मछुए जैसे मुझ उभयजीवी प्राणी की दैनिकी का एक पृश्ठ पढ़ने की पाठकगण कृ पा करेंगे।

तारीख 21 सितम्बर सन् 45 (केवल यहीं पष्ठ लिखकर मैं घबड़ा गया था, वास्तविकता की पुनरावत्ति में नहीं चाहता हूँ।)

प्रातः काल चार बजे (लिलिथिगो टाइम से) उठा। अपनी 'सिद्धान्त और अध्ययन' षीर्शक पुस्तक के लिए बिना कुछ पढ़े नहीं लिख सकता, वास्तव में मेरे लेखन में एक तिहाई दूसरे से पढ़ा होता है, एक बटा छह उसके आधार से स्वयं प्रकाषित और ध्वनित विचार होते हैं एक बटा छह सप्रयत्न सोचे हुए विचार होते हैं और एक तिहाई मलाई के लड्डू की बर्फी बना चोरी को छिपाने वाली अभिव्यक्ति की कला रहती है। छह से सवा छह तक कागज, कलम, स्याही जुटाने में खर्च किया। घर की अव्यवस्था ही मेरे घर की व्यवस्था रहती है। जिस दिन मैं नहीं पढ़ता–लिखता, उसी दिन मेरी मेज सही सम्हली पड़ी रहती। आठ बजे तक मध्ये–मध्ये आचमनीयम् तथा पुंगीफल खण्डों के विराम चिन्ह सहित लिखा।

नौ बजे तैयार होकर प्रूफ की तलाष में प्रेस गया, अक्षर भगवान को छछियाभर छाछ के बजाय बेलन के बल, जगत की कालिमा मिला कर, उँगलियों पर नचाने वाले कम्पोजीटर देव की अनुपस्थिति में काट–छाँट की और प्रूफ भी घटाया बढ़ाया। इस प्रकार उनकी झूझल का सामना कर, बाजार गया। वहाँ पहुँचते ही षेखर के अन्तिम दिन की भांति घर के सारे अभावों का ध्यान आ गया। किन्तु बाजार में कोई स्थान नही हैं, जहाँ कल्प वृक्ष की भांति सब अभावों की एक साथ पूर्ति हो जाय। अगर अच्छा साबुन राजामण्डी से मिलता है तो अच्छा मसाला रावतपाड़े में। किन्तु वहाँ भैंस के लिये भुस का अभाव था। बाल–बच्चों की दवा के बाद अगर किसी वस्तु को मुख्यता मिलती है तो भैंस के भुस को क्योंकि उसके बिना काले अक्षर की सृश्टि नहीं हो सकती। मेरी काली भैंस धवल दुग्ध का ही सृजन नहीं करती। वरन् उनके सदृष्य ही धवल यष के सृजन में भी सहायक होती हैं इस गुण के होते हुए वह मेरे जीवन की एक बड़ी समस्या हो गई है। मैं हर साल उसके लिये अपने घर के पास के खेत में चरी कर लेता था। इस साल वर्शा के होते हुए भी मेरे यहाँ चरी नहीं हुई– भाग्य फलाति सर्वत्र, न विधा न च पौरूश'। मेरे पडोसी के ईश्याजनक लहलहाती खेती है। मेरी भैंस को उस खेत से ईर्श्या पहीं वरन् सच्चा अनुराग है, वह सच्चे भक्तों की भांति गृह बन्धनों को तोड़कर अपने प्रेम का आक्रमण कर देती है। जितना वे उसे भगाते हैं उतनी ही उनकी चरी रोधी जाती है और जितनी चरी रोधी जाती है उससे अधिक उनका दिल खुलता है। मालूम नहीं, इसको अलंकारषास्त्र में असंगति कहते हैं या और कुछ। घाव लक्ष्मण जी के हृदय में था और पीर रघुवीर के हृदय में, वैसे ही रोध ी घरी जाती थी और दुख मेरे पड़ोसी महोदय के हृदय में होता था ।

मैं संघर्श में पड़ता नहीं, किन्तु कभी–कभी इच्छा न रखते हुए भी संघर्श बड़ा तीव्र हो जाता है। बच्चों के दूध और पड़ोसी के साथ सद्भावना में ऐसा अन्तर्द्वन्द्व उपस्थित हो जाता है जो षायद प्रसाद जी के नाटकों में भी सहज ही न मिले। खैर, आजकल उसका दूध कम हो जाने पर भी और अपने मित्रों को छाछ भी न पिला सकने की विवषता की झूझल के होते हुए भी (सुरराज इन्द्र की तरह मुझे भी मठा दुर्लभ हो गया है।) (तक्र षक्रमपि दुर्लभ) उसके लिये भुस लाना अनिवार्य हो जाता है। कहाँ असाधिकरण और अभिव्यंजनावाद की चर्चा और कहाँ भुस का भाव ? भुस खरीद कर मुझे भी गधे के पीछे ऐसे चलना पड़ता है जैसे बहुत से लोग अकल के पीछे लाठी लेकर चलते हैं। कभी–कभी गधे के साथ कदम मिलाये रखना कठिन हो जाता है। (प्रगतिषीलता में वह मुझसे चार कदम आगे रहता है) लेकिन मुझे गधे के पीछे चलने में उतना ही आनन्द आता है जितना की पलायनवादी को जीवन से भागने में। बहुत से लोग तो जीवन की छुट्टी पाने के लिये कला का अनुसरण करते हैं किन्तु मैं कला से छुट्टी पाने के लिए जीवन में प्रवेष करता हूँ। भुस और अपने लिए

11 बजे हाट से भैंस के लिए षाक–भाजी लेकर लौटा, स्नान किया, भोजन किया और करीब–करीब 12 बजे कॉलेज पहुँचा। लडको को पढ़या या बहकाया––में गलत पढ़ाने का पाप नहीं करता, किन्तु जो मुझे नहीं आता उसे कभी–कभी कौषल के साथ छोड़ देता हूँ। यदि कोई छन्द इम्तहान में आने लायक हुआ तो मैं बेईमानी नहीं करता।

कॉलेज की लाइब्रेरी से कुछ पुस्तकें लीं और फिर 'साहित्य संदेष' के दफ्तर आया। वहाँ जलपान किया, जल पीकर खाना खाया। कभी–कभी रूढ़ि अर्थ में भी जलपान करता हूँ और कभी षुद्ध अभिधार्थ में जल का पान करता हूँ। कम्पोजीटर की षिकायत सुनी, दीन षराब की–सी तोबा की कि अब न घटाऊँगा–बढ़ाऊँगा। आप लोगों को कश्ट अवष्य होता हैं अनुनय विनय की ('अबला नसानी अब न नसैहो) । किन्तु क्या करूँ आदत से मजबूर हूँ। बनियों की पछिल बुद्धि होती है। लिखने के बाद कहीं प्रूफ पढ़ने पर संषोधन सूझते हैं। प्रूफ पढ़े। कम्पोजीटरों से बढ़कर स्वयं झुंझल का षिकार बना। चार बजे घर लौटा। अभावों की नई गाथा सुनी, घर की भूली हुई समस्याएँ सामने आई। खूंटा उखाड़ कर भैंस भाग गई थी, उसकी सांकल किसी ने उतार ली है, क्या फिर दुबारा बाजार जाऊँ ? इसी संकल्प–विकल्प में दुग्ध पान किया। रात्रि में जल के मार्जन और आचमन से निद्रादेवी का जो तिरस्कार किया था उसका प्रायष्चित किया। उठकर भाई को पत्र लिखा।

रमणीयता के सम्बन्ध में हमारे यहाँ कहा गया है कि 'क्षण–क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूप रमणीयतायाः जो क्षण–क्षण में नता धारण करती रहती है। ये मेरी कल्पना से भी चार नवीनता कदम आगे रहती है। फिर मैं उसे सुन्दर क्यों न कहूँ। षास्त्रीय परिभाशा के बाहर मैं नहीं जा सकता। आज किसी ने भैंस की जंजीर चुरा ली तो कल पड़िया ने खेत खा लिया । मेरी षान्ति को भंग करने के लिये एक एटम बम्ब रोज तैयार रहता है। किसी को बुखार आ गया तो किसी के दांत में दर्द है, कभी चीनी राषन की मर्यादा को पार कर गई तो कभी कपड़ों की चर्चा। सर्वोपरि लड़ाई के दिनों में सुरसा के मुख की भांति बढ़ते हुए खर्ची के कलियुग में श्रद्धा की भाँति घटते हुए बैंक–षेश को बौद्धों के परम तत्व (षून्य) की गति से बचाने की फिक्र। ध न भी हो तो वस्तु का अभाव। कपड़ों के सम्बन्ध में डिस्ट्रिक्ट सप्लाई ऑफिसर से मिलने का संकल्प किया, घर में इधर–उधर का वार्तालाप किया। सायंकाल को अपने पडोसी द्विवेदी जी के यहाँ बैठकर स्त्रियों के वेदाध्ययन के अधिकार पर चर्चा की। यद्यपि मेरे घर में किसी के वेद पढ़ने की आषंका नहीं, फिर भी षहर के अंदेषों में परेषान होने में कुछ ट्रेजड़ी के पढ़ने का सा आनन्द आता है। मैंने कहा कि जब स्त्रियों में मंत्र–द्रश्टा है तो उनको वेदों के पढने का अधिकार क्यों नहीं? उन्होंनें कहा जो षास्त्र में लिखा है वह लिखा है, उसमें संगति लाने और तर्क उठाने की गुंजाइष नहीं। विचारों में घोर मतभेद होते हुए भी वह कटुता की सीमा तक नहीं पहुंचता। और मैं उनके यहाँ बैठकर 'काव्यषास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम्' की उक्ति को सार्थक करता रहता हूँ।

रात को सबेरे की साहित्यिक चोरी के लिये कुछ पढ़ा। बच्चों से वार्तालाप किया। कुछ मनोविनोद हुआ। कभी–कभी जब वे करुण, रौद्र या वीर रस का लौकिक प्रर्दषन करने लगते हैं, तब मुझे प्रसाद की निम्नलिखित पंक्तियों की सार्थकता समझ में आने लगती है–

ले चल, वहाँ, भुलावा देकर
मेरे नावक धीरे–धीरे ।
जिस निर्जन में सागर लहरी,
अम्बर के कानों में गहरी––
निष्छल प्रेम कथा कहती हो
तज कोलाहल की अवनी रे ।

बच्चों को मैं पढ़ाता बहुत कम हूँ, यहाँ तक कि मेरे बच्चे भी मुझ पर इस बात का व्यंग्य करने लगते हैं। मेरे एक षिश्यप्रवर ने (जब आचार्य प्रवर कहलाते हैं, तो षिश्यप्रवर भी कहलाने चाहिये) किसी प्रसंग में कहा, हम तो आपके बच्चे हैं

आपका आशीर्वाद चाहते हैं। मेरे कनिश्ठ पुत्र विनोद ने जिसकी आयु प्रायः बारह साल की है, तुरन्त उत्तर दिया "आप अगर बाबू जी के बच्चे बनेंगे तो आपको पढाना छोड देंगे क्योंकि आप बच्चों को नहीं पढ़ाते है।'' यही मेरे पारिवारिक जीवन की कमी है। वैसे इन झंझटों के होते हुए भी अत्यंत सुखी हूॅ। चारों ओर अनुकूलता और आज्ञाकारिता है। मैं हृदय की सच्चाई से कह सकता हूँ कि जन्म–जन्मान्तर में भी मेरा जन्म इसी परिवार में हो। मैं मोक्ष के लिए उत्सुक नहीं हूँ।

सन्दर्भः

1. कुछ–न–कुछ मनोविनोद का सामान दूसरे दिन उपस्थित हो ही जाता है। एक रोज एक बच्चा गा रहा था, 'दुनिया में कौन हमारा' तो दूसरे ने तुक मिलाई 'पापा प्यारे षषी उतारा।

2. इस दिनचर्या में थोड़ा परिवर्तन हो गया। भैंस के प्रति तुलसीदास जी जैसा अनन्य भाव रखते हुए भी अब भैंस के स्थान पर गाय पाल ली है। समस्याएँ तो करीब–करीब वे ही हैं। आज कल मेरे पडोसी के यहाँ घास अच्छी है– वैसे भी परसोई पत्तल का भात अच्छा लगता है– उस पर आक्रमण होता है। समय पड़ने पर मैं रघुवंष (215) में वर्णित महाराजा दिलीप के पूरे कार्यक्रम का अनुकरण करता हूँ– "आस्वादभिदकवलैस्तरणानां कण्डूयनेर्देष निवारणैष्च'' अर्थात् घास के सुस्वादी ग्रासी से, खुजलाने और डांस उड़ाने से मैं उसे प्रसन्न करना चाहता हूँ केवल एक बात की कसर रह जाती है– मैं उसकी 'अव्याहृतैः स्वैरगतै' क्योंकि उनके स्वच्छन्द विचरण में पड़ोसियों के विनम्र परन्तु तीखे उपालम्भों का भय रहता है। मैं यदि सम्राट होता तो उसकी अवधित गति पर आक्षेप करने का किसी को साहस न होता। उसके लिए मुझे तब बाजार नहीं जाना पड़ता। बाजार हाट का बहुत–सा काम अब मेरा कनिश्ठ पुत्र विनोद कर लेता है। गाय भी ठल्ल है। अब मे। उसे कर्तव्य बुद्धि से पाले हुए हूँ, किन्तु पड़ोसियों की फुलवारी की रक्षा के हेतु उसको विदा देनी ही पड़ेगी। मुझे अपनी फुलवारी की तो विषेश परवाह नहीं है, क्योंकि वह तो षुद्ध व्यसन के रूप में किये हुए हूँ। षारीरिक षैथिल्य के कारण मैं स्वयं उससे हाथ नहीं लगाता। इससे उसके प्रति विषेश मोह भी नहीं है। कम्पोजीटर अब भी मुझसे परेषान है। उनकी परेषानी दूर करने के लिए मैंने एक सहायक रख लिया है। उनको अस्तव्यस्त लेखों से षुद्ध कापी तैयार करनी पड़ती है। प्रेस कापी भी मेरे आक्रमण से नहीं बनती। उसमें भी संषोधन होते है और कम्पोजीटर देवों के लिए मुसीबत हो जाती है। कि षैथिल्य के कारण मेरी व्यस्तता कुछ कम हो गयी है। इस हेतु कभी–कभी कुछ न करने की ऊब से परेषान हो जाता हूँ। यह दुःख और कुछ–कुछ प्रसन्नता की बात है कि औरों को

जिनसे मेरा मन रम सकता है, इतना अवकाष नहीं किवे मेरे खाली समय में आकर गपाश्टक लगावें और मेरी ऊब को दूर करें।

4. अथातो चुमक्कड़ – जिज्ञासा

(रिपोर्ताज)

राहुल सांकृत्यायन

संस्कृत के ग्रन्थ को षुरू करने के लिए पाठकों को रोश नहीं होना चाहिए। आखिर हम षास्त्र लिखने जा रहे हैं, फिर षास्त्र की परिपाटी को तो मानना ही पडेगा। षास्त्रों में जिज्ञासा ऐसी चीज के लिए होनी बतलाई गई हैं, जो कि श्रेश्ठ तथा व्यक्ति और समाज के लिए परम हितकारी हो। व्यास ने अपने षास्त्र में ब्रा को सर्वश्रेश्ठ मानकर उसे जिनया का विशय बताया। व्यास षिश्य जैमिनी ने धर्म को श्रेश्ठ माना। पुराने ऋशियों से मतभेद रखना हमारे लिए पाप की वस्तु नहीं है, आखिर छह षास्त्रों के रचयिता छह वास्तिक ऋशियों में भी आधों ने ब्रह्म को धता बता दिया है। मेरी समझ में दुनिया की सर्वश्रेश्ठ वस्तु है घुमक्कड़ी। घुमक्कड़ से ंढकर व्यक्ति और समाज का कोई हितकारी नहीं हो सकता। कहा जाता है, ब्रह्म ने सरश्टि को पैदा, धारण और नाष करने का जिम्मा अपने ऊपर लिया है। पैदा करना और नाष करना दूर की बातें हैं, उनकी यथार्थता सिद्ध करने के लिए न प्रत्यक्ष प्रमाण सहायक हो सकता है, न अनुमान ही। हाँ दुनिया के ध ाारण की बात तो निष्चय ही न ब्रह्म के ऊपर है, न विश्णु के और न षंकर के ही ऊपर। दुनिया– दुःख में हो, चाहे सुख में सभी समय यदि सहारा पाती है, तो घुमक्कड़ों की ही ओर से। प्राकृतिक आदिम मनुश्य परम घुमक्कड़ था। खेती, बागबानी तथा घर–द्वार से मुक्त वह आकाष के पक्षियों की भाँति परथ्वी पर सदा विचरण करता था, जाड़े में यदि इस जगह था तो गर्मियों में वहीं से दो सौ कोस दूर।

आधुनिक काल में घुमक्कड़ों के काम की बात कहने की आवष्यकता है, क्योंकि लोगों ने घुमक्कड़ों की कृतियों को चुराके उन्हें गला फाड़–फाड़कर अपने नाम से प्रकाषित किया, जिससे दुनिया जानने लगी कि वस्तुतः तेली के कोल्हू के बैल ही दुनिया में सब कुछ करते हैं। आधुनिक विज्ञान में चार्ल्स डारविन का स्थान बहुत ऊँचा है। उसने प्राणियों को उत्पत्ति और मानववंष के विकास पर ही अद्वितीय खोज नहीं की, बल्कि सारे ही विज्ञानों को उससे सहायता मिली। कहना चाहिए कि सभी विज्ञानों को डारविन के प्रकाष में दिषा बदलनी पड़ी। लेकिन क्या डारविन अपने महान् आविश्कारों को कर सकता था, यदि उसने घुमक्कड़ी का व्रत न लिया हो?

मैं मानता हूँ, पुस्तकें भी कुछ—कुछ घुमक्कड़ी का रस प्रदान करती है, लेकिन जिस तरह फोटो देखकर आप हिमालय के देवदार के गहन वनों और ष्वेत हिम—मुकुटित षिखरों के सौन्दर्य, उनके रूप, उनके गंध का अनुभव नहीं कर सकते उसी तरह यात्रा – कथाओं से आपको उस बूँद से भेंट नहीं हो सकती जो एक घुमक्कड़ को प्राप्त होती हैं। अधिक से अधिक यात्रा पाठकों के लिए यही कहा जा सकता है कि दूसरे अन्धों की अपेक्षा उन्हें थोड़ा आलोक मिल जाता है और साथ ही ऐसी प्रेरणा तो मिल सकती है जो स्थायी नहीं तो कुछ दिनों के लिए उन्हें घुमक्कड़ बना सकती है। घुमक्कड़ क्यों दुनिया की सर्वश्रेश्ठ विभूति है? इसीलिए कि उसी ने आज की दुनिया को बनाया है। यदि आदिम पुरुश एक जगह नदी या तालाब के किनारे गरम मुल्क में पड़े रहते तो वह दुनिया को आगे नहीं ले जा सकते थे। आदमी की घुमक्कड़ी ने बहुत बार खून की नदियां बहाई हैं, इसमें सन्देह नहीं, और घुमक्कड़ों से हम हरगिज नहीं चाहेंगे कि वह खून के रास्ते को पकड़ें किन्तु अगर घुमक्कड़ों के काफिले न आते—जाते, तो सुस्त मानव—जातियाँ सो जातीं और पषु से ऊपर नहीं उठ पातीं। आदिम घुमक्कड़ों में से आर्यों, षकों, हूणों ने क्या—क्या अपने खून पथों द्वारा मानवता के पथ को किस तरह प्रषस्त किया, इसे इतिहास में हम उतना स्पश्ट वर्णित नहीं पाते, किन्तु मंगोल घुमक्कड़ों की करामातों को तो हम अच्छी तरह जानते हैं। बारूद, तोप, कागज, छापाखाना, दिग्दर्षक चष्मा यह चीजें थीं, जिन्होंने पष्चिम में विज्ञान—युग का आरम्भ कराया, और इन चीजों को वहाँ ले जाने वाले मंगोल घुमक्कड़ ही थे। कोलम्बर और वास्कोडिगामा दो घुमक्कड़ ही थे, जिन्होंने पष्चिम देषों के आगे बढ़ने का रास्ता खोला। अमेरिका अधिकतर निर्जन—सा पड़ा था। एषिया के कूपमंडूकों को घुमक्कड़ धर्म की महिमा भूल गई, इसलिए उन्होंने अमेरिका पर अपनी झंडी नहीं गाड़ी। दो. षताब्दियों पहले तक आस्ट्रेलिया खाली पड़ा था। चीन और भारत को सभ्यता का बड़ा गर्व है, लेकिन इनको इतनी अकल नहीं आई कि जाकर वहाँ अपना झंडा गाड़ आते। आज अपने 45—50 करोड़ की जनसंख्या के भार से भारत और चीन की भूमि दबी जा रही है, और ऑस्ट्रेलिया का द्वार बन्द है लेकिन दो सदी पहले वह हमारे हाथ की चीज थी। क्यों भारत और चीन आस्ट्रेलिया की अपार संपत्ति और अमित भूमि से वंचित रह गये? इसलिए कि वह घुमक्कड़ धर्म से विमुख थे, उसे भूल चुके थे।

हाँ, मैं इसे भूलना ही कहूँगा, क्योंकि किसी समय भारत और चीन ने बड़े—बड़े नामी घुमक्कड़ पैदा किये। वे भारतीय घुमक्कड़ ही थे जिन्होंने दक्षिण पूरब में लंका, वर्शा, मलाया, यवद्वीप, स्याम, कम्बोज, चम्पा, बोर्नियों और सेलीबीज ही नहीं, फिलपाईन तक का धावा मारा था और एक समय तो जान पड़ा कि

न्यूजीलैंड और ऑस्ट्रेलिया भी वरहत्तर भारत का अंग बनने वाला है। लकिन कूपमंडूकता तेरा सत्यानाष हो। देष के बुद्धओं ने उपदेष करना षुरू किया कि समुन्दर के खारे पानी और हिन्दू–धर्म में बड़ा बैर है, उसके छूने मात्र से वह नमक की पुतली की तरह गल जायेगा। इतना बतला देने पर क्या कहने की आवष्यकता है कि समाज के कल्याण के लिए घुमक्कड़–धर्म कितनी आवष्यक चीज है? जिस जाति या देष ने इस ध र्स को अपनाया, वह चारों फलों का भागी हुआ, और जिसने इसे दुराया, उसके लिए नरक में भी ठिकाना नहीं। आखिर घुमक्कड़ धर्म को भूलने के कारण ही हम सांत षताब्दियों तक धक्का खाते रहे, एरे–गैरे जो भी आये, हमें चार लात लगाते गए।

षायद किसी को सन्देह हो कि मैनें इस षास्त्र में जो युक्तियाँ दी हैं, वह सभी लौकिक तथा षास्त्र–ग्राह्य हैं। अच्छा तो धर्म से प्रमाण लीजिए, दुनिया के अधि ाकांष धर्मनायक घुमक्कड़ रहे। धर्माचार्यो में आचार–विचार, बुद्धि और तर्क तथा सहृदयता में सर्वश्रेश्ठ बुद्ध घुमक्कड राज थे। यद्यपि वह भारत से बाहर नहीं गए, लेकिन वर्शा के तीन मासों को छोड़कर एक जगह रहना वह पाप समझते थे। वह अकेले ही घुमक्कड़ नहीं थे, बल्कि आरम्भ ही में अपने षिश्यों को उन्होंने कहा था– ''चरथ भिक्खये। चारिक'' जिसका अर्थ है – भिक्षुओं घुमक्कड़ी करो। बुद्ध के भिक्षुओं ने अपने गुरु की षिक्षा को कितना माना, क्या इसे बताने की आवष्यकता है? क्या उन्होंने पष्चिम में मकदूनिया तथा मिस्र से पूरब में जापान तक, उत्तर में मंगोलिया से लेकर दक्षिण में बाली और बांका द्वीपों तक को रौंदकर रख नहीं दिया? जिस बृहत्तर भारत के लिए हरेक भारतीय को उचित अभिमान है क्या उसका निर्माण इन्हीं घुमक्कड़ों की चरण–धूलि से नहीं किया? केवल बुद्ध ने ही अपनी घुमक्कड़ी से प्रेरणा नहीं दी, बल्कि घुमक्कड़ों का इतना जोर बुद्ध से एक दो षताब्दियों पूर्व भी था, जिसके ही कारण बुद्ध जैसे घुमक्कड़ – राज इस देष में पैदा हो सके। उस वक्त पुरुश ही नहीं, स्त्रियां तक जम्बू–वृक्ष की षाखा से अपनी प्रखर प्रतिभा का जौहर दिखाती, बाद में कूपमंडूकों को पराजित करतीं सारे भारत विचरा करती थीं।

में मुक्त होकर कोई–कोई महिलाएँ पूछती हैं– क्या स्त्रियां भी घुमक्कड़ी कर सकती है, क्या उनको भी इस महाव्रत की दीक्षा लेनी चाहिए? इसके बारे में तो अलग अध्याय ही लिखा जाने वाला है, किन्तु यहाँ इतना कह देना है कि घुमक्कड़–धर्म ब्राह्मण–धर्म जैसा संकुचित नहीं है, जिसमें स्त्रियों के लिए स्थान नहीं हो। स्त्रियाँ इसमें इतना ही अधिकार रखती हैं, जितना पुरुश। यदि वह जन्म सफल करके व्यक्ति और समाज के लिए कुछ करना चाहती हैं, तो उन्हें भी दोनों हाथों इस धर्म को स्वीकार करना चाहिए। घुमक्कडी धर्म छुड़ाने के लिए ही पुरुश

ने बहुत–से बंधन नारी के रास्ते में लगाये हैं। बुद्ध ने सिर्फ पुरुशों के लिए घुमक्कड़ी करने का आदेष नहीं दिया। बल्कि स्त्रियों के लिए भी उनका वही उपदेष था।

भारत के प्राचीन धर्मो में जैन धर्म भी है। जैन धर्म के प्रतिश्ठापक श्रमण महावीर कौन थे? वह भी तो घुमक्कड़– राज थे। घुमक्कड़ धर्म के आचरण में छोटी–से–बड़ी तक सभी बाधाओं और उपाधियों को उन्होंने त्याग दिया था–घर–द्वार और नारी सन्तान ही नहीं, वस्त्र का भी वर्जन कर दिया। 'कर–तलभिक्षा, तरुतल बास' तथा दिन–अम्बर को उन्होंने इसीलिए अपनाया था, कि निर्द्वन्द्र विचरण में कोई बाधा न रहे। ष्वेताम्बर–बन्धु दिगम्बर कहने के लिए नाराज न हों। वस्तुतः हमारे वैज्ञानिक महान् घुमक्कड़, कुछ बातों में दिगम्बरों की कल्पना के अनुसार थे और कुछ बातों में ष्वेताम्बरों के उल्लेख के अनुसार। लेकिन इसमें तो दोनों सम्प्रदायों और बाहर के मर्मज्ञ भी सहमत हैं, कि भगवान महावीर दूसरी–तीसरी नहीं, प्रथम श्रेणी के घुमक्कड़ थे। वह आजीवन घूमते ही रहे। वैषाली में जन्म लेकर विचरण करते पावा में उन्होंने अपना षरीर छोड़ा। बुद्ध और महावीर से बढ़कर यहद कोई त्याग, तपस्या और सहृदयता का दावा करता है, तो मैं उसे केवल दम्भी कहूँगा । आज–कल कुटिया या आश्रम बनाकर तेली के बैल की तरह कोल्हू से बंधे कितने ही लोग अपने को अद्वितीय महात्मा कहते हैं या चेलों से कहलवाते हैं लेकिन मैं तो कहूँगा घुमक्कड़ी को त्यागकर यदि महापुरुश बना जाता तो फिर ऐसे लोग गली–गली में देखे जाते। मैं तो जिज्ञासुओं को खबरदार कर देना चाहता हूँ किवह ऐसे मुलम्मेवाले महात्माओं और महापुरुशों के फेर से बचे रहें। वे स्वयं तेली के बैल तो है, दूसरों को भी अपने ही जैसा बना रखेंगे।

बुद्ध और महावीर जैसे सरश्टिकर्ता ईष्वर से इनकारी महापुरुशों की घुमक्कड़ी की बात से यह नहीं मान लेना होगा, कि दूसरे लोग ईष्वर के भरोसे गुफा या कोठरी में बैठकर सारी सिद्धियाँ पा गये या पा जाते है। यदि ऐसा होता, तो षंकराचार्य जो साक्षात् बह्मस्वरूप थे, क्यों भारत के चारों कोनों की खाक छानते फिरे? षंकर को षंकर किसी ब्रह्म ने नहीं बनाया, उन्हें बड़ा बनाने वाला था घुमक्कड़ी धर्म। षंकर बराबर घूमते रहे–आज केरल देष में थे तो कुछ ही महीने पहले मिथिला में, और अगले साल कृमीर या हिमालय के किसी दूसरे भाग में। षंकर तरुणाई में ही षिवलोक सिधार गये किन्तु थोड़े से जीवन में उन्होंने सिर्फ तीन भाश्य ही नहीं लिखेय बल्कि अपने आचरण से अनुयायियों को वह घुमक्कड़ी का पाठ पढ़ा गये कि आज भी उसके पालन करने वाले सैकड़ों मिलते हैं। वास्कोडिगामा के भारत पहुँचने से बहुत पहले षंकर के षिश्य मास्कों और योरुप तक पहुँचे थे। उनके साहसी षिश्य सिर्फ भारत के चार धामों से ही सन्तुश्ट नहीं थे बल्कि उनमें से कितनों ने जाकर बाकू (रूस) में धूनी रमाई। एक पर्यटन करते हुए वोल्गा तट

पर निज्नीनोवोग्राद के महामेले को देखा। फिर क्या था, कुछ समय के लिए वहीं डट गया और उसने ईसाइयों के अंतर कितनी ही अनुयायी पैदा कर लिये, जिनकी संख्या भीतर–ही–भीतर बढ़ती, इस षताब्दी के आरम्भ में कुछ लाख तक पहुँच गई थी।

रामानुज, मध्वाचार्य और वैशणवाचार्यों के अनुयायी मुझे क्षमा करें, यदि मैं कहूँ कि उन्होंने भारत में कूप मंडूकता के प्रचार में बड़ी सरगर्मी दिखाई। भला हो, रामानन्द और चौतन्य का, जिन्होंने कि पंक के पंकज वन कर आदि काल से चले आते महान् घुमक्कड़ धर्म की फिर से प्रतिशठापना की, जिसके फलस्वरूप प्रथम श्रेणी के तो नहीं किन्तु द्वितीय श्रेणी के बहुत से घुमक्कड़ उनमें पैदा हुए। ये विचारे बांबू की बड़ी ज्वालामाई तक कैसे जाते, उनके लिये तो मानसरोवर तक पहुँचना भी मुष्किल था। अपने हाथ से खाना बनाना, मांस–अण्डे से छू जाने पर भी धर्म का चला जाना, हाड़–तोड़ सर्दी के कारण हर लघुषंका के बाद स्नान करना तो यमराज को निमंत्रण देना होता, इसीलिए बेचारे फूँक–फूंक कर ही घुमक्कड़ी कर सकते थें इसमें किसे उज्र हो सकता है, कि षैव हो या वैशणव, वेदान्ती हो या सदान्ती, सभी को आगे बढ़ाया केवल घुमक्कड़ धर्म ने।

महान् घुमक्कड़–धर्म, बौद्ध धर्म का भारत से लुप्त होना क्या था, तब से कूप मंडूकता का हमारे देष में बोलबाला सा हो गया। सात षताब्दियाँ बीत गई, और इन सातों षताब्दियों में दासता और परतंत्रता हमारे देष में पैर तोड़कर बैठ गई, यह कोई आकस्मिक बात नहीं थी ।

लेकिन समाज के अगुओं ने चाहे कितना ही कूप मंडूक बनाना चाहा, लेकिन इस देष में माई–के–लाल जब–तब पैदा होते रहे, जिन्होंने कर्म पथ की ओर संकेत किया। हमारे इतिहास में गुरुनानक का समय दूर का नहीं है, लेकिन अपने समय के वह महान् घुमक्कड़ थे। उन्होंने भारत भ्रमण को ही पर्याप्त नहीं समझा और ईरान और अरब तक का धावा मारा। घुमक्कड़ी किसी बड़े योग से कम सिद्धिदायिनी नहीं है, और निर्भीक तो वह एक नंबर का बना देती है। घुममे नानक पक्के में जाके कावा की ओर पैर फैला कर सो गये, मुल्लों ने इतनी सहिशणुता होती तो आदमी होते। उन्होंने एतराज किया और पैर पकड़ के दूसरी ओर करना चाहा । उनको यह देखकर बड़ा अचरच हुआ कि जिस तरफ घुमक्कड़ नानक का पैर घूम रहा है,

काबा भी उसी ओर चला जा रहा है। यह है। चमत्कार ! आज के सर्वषक्तिमान, किन्तु कोठरी में बन्द महात्माओं में है कोई ऐसा, जो नानक की तरह हिम्मत और चमत्कार दिखलाए ?

दूर षताब्दियों की बात छोड़िए अभी षताब्दी भी नहीं बीती, इस देष से स्वामी दयानन्द को विदा हुए। स्वामी दयानन्द को ऋशि किसने बनाया? घुमक्कड़ी ध र्म ने। उन्होंने भारत के अधि क भागों का भ्रमण कियाय पुस्तक लिखते, षास्त्रार्थ करते वह बराबर भ्रमण करते रहे। षास्त्रों को पढ़कर काषी के बड़े–बड़े पंडित महामंडूक बनने में सफल होते रहे, इसलिए दयानन्द को मुक्त बुद्धि और तर्क–प्रध ाान बनाने का कारण षास्त्रों से अलग कहीं ढूँढना होगा। और वह उनका निरन्तर घुमक्कड़ी धर्म का सेवन। उन्होंने समुद्र यात्रा करने, द्वीप–द्वीपान्तरों में जाने के विरुद्ध जितनी थोथी दलीलें दी जाती थीं, सबको चिद्दी – चिद्दी उड़ा दिया और बतलाया कि मनुश्य स्थावर वृक्ष नहीं हैं, वह जंगम प्राणी है। चलना मनुश्य का धर्म है। जिसने इसे छोड़ा वह मनुश्य होने का अधिकारी नहीं है।

माड्यूल – 4 गद्य की अन्य विधाएँ और संकलित रचनाकार

इकाई – 12 राहुल सांकृत्यायन

बीसवीं षताब्दी के भारतीय घुमक्कड़ों की चर्चा करने की आवष्यकता नहीं। इतना लिखने से मालूम हो गया कि संसार में यदि कोई अनादि सनातन धर्म है, तो वह घुमक्कड़ धर्म है। लेकिन वह संकुचित सम्प्रदाय नहीं है, वह आकाष की तरह महान है, समुद्र की तरह विषाल है। जिन धर्मो ने अधिक यष और महिमा प्राप्त की है, वह केवल घुमक्कड़ धर्म ही के कारण। प्रभु ईसा घुमक्कड़ थे, उनके अनुयायी ऐसे घुमक्कड़ थे, जिन्होंने ईसा के संदेष को दुनिया के कोने–कोने में पहुँचाया। यहूदी पैगम्बरों ने घुमक्कड़ी धर्म को भुला दिया जिसका फल षताब्दियों तक उन्हें भोगना पड़ा। उन्होंने अपने जान चूल्हे से सिर निकालना नहीं चाहा। घुमक्कड धर्म की ऐसी भारी अवहेलना करने वाले की जैसी गति होनी चाहिए, वैसी गति उनकी हुयी। चूल्हा हाथ से छूट गया और सारी दुनिया में घुमक्कड़ी करने को मजबूर हुए, जिसने आगे उन्हें मारवाड़ी सेठ बनाया या यो कहिए कि घुमक्कड़–धर्म की एक छींट पड़ जाने से मारवाड़ी सेठ भारत के यहूदी बन गए। जिसने इस धर्म की अवहेलना की, उसे रक्त के आँसू बहाने पड़े। अभी इन बेचारों ने बड़ी कुर्बानी के बाद और दो हजार वर्श की घुमक्कड़ी के तजुर्बे के बल पर फिर स्थान प्राप्त किया। आषा है स्थान प्राप्त करने से वह चूल्हे में सिर रखकर बैठने वाले नहीं बनेंगे। अस्तु, सनातन धर्म से पतित यहूदी जाति को महान पाप का प्रायष्चित या दण्ड घुमक्कड़ी के रूप में भोगना पड़ा, और अब उन्हें पैर रखने का स्थान मिला। आज भारत तना हुआ है। वह यहूदियों की भूमि और राज्य को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। जब बड़े–बड़े स्वीकार कर चुके हैं, तो कितने दिनों तक यह हठधर्मी चलेगी? लेकिन विशयान्तर में न जाकर हमें यह कहना था कि यह घुमक्कडी धर्म है,

युद्ध–विद्या के कच्चे निकलेगी, लेकिन उन्होंने पाँच–पाँच अरबी साम्राज्यों की सारी षेखी को धूल में मिलाकर चारों खानो चित्त कर दिया और सबने नाक रगड़ कर उनसे षांति को भिक्षा योगी इतना कहने से अब कोई संदेह नहीं रह गया, कि घुमक्कड धर्म से बढ़कर दुनिया में धर्म नहीं हैं। धर्म भी छोटी बात है, उसे घुमक्कड़ के साथ लगाना " महिमा घटी समुद्र की, रावण बसा पड़ोस" वाली बात होगी। घुमक्कड़ होना आदमी के लिए परम सौभाग्य की बात है। यह पथ अपने अनुयायी को मारने के बाद किसी काल्पनिक स्वर्ग का प्रलोभन नहीं देता, इसके लिए तो कह सकते हैं ''क्या खूब सौदा नकद है, इस हाथ ले उस हाथ दे।'' घुमक्कड़ी वही कर सकता है, जो निष्चिन्त है। किन साधनों से सम्पन्न होकर आदमी घुमक्कड़ बनने का अधिकारी हो सकता है, यह आगे बतलाया जाएगा, किन्तु घुमक्कड़ी के लिए चिन्ताहीन होना आवष्यक है, और चिन्ताहीन होने के लिए घुमक्कड़ी भी आवष्यक है। दोनों का अन्योन्याश्रय होना दूशक नहीं, भूशण है। घुमक्कड़ी से बढ़कर सुख कहाँ मिल सकता है? आखिर चिन्ताहीनता तो सुख का सबसे स्पश्ट रूप है। घुमक्कड़ी में कश्ट भी होते हैं, लेकिन उसे उसी तरह समझिए, जैसे भोजन में मिर्च में यदि कड़वाहट न हो, तो क्या कोई मिर्च–प्रेमी उसमें हाथ भी लगाएगा? वस्तुतः घुमक्कड़ी में कभी–कभी होने वाले कड़वे अनुभव उसके रस को और बढ़ा देते हैं, उसी तरह जैसे काली पृश्ठभूमि में चित्र अधिक खिल उठता है।

व्यक्ति के लिए घुमक्कड़ी से बढ़कर कोई नगद धर्म नहीं है। जाति का भविश्य घुमक्कड़ों पर निर्भर करता है, इसलिए मैं कहूंगा कि हरेक तरुण और तरुणी को घुमक्कड़ व्रत ग्रहण करना चाहिए, इसके विरूद्ध दिये जाने वाले सारे प्रमाणों को झूठ और व्यर्थ का समझना चाहिए। यदि माता–पिता विरोध करते हैं तो समझना चाहिए वह भी प्रहलाद के माता–पिता के नवीन संस्करण है। यदि हितू – बान्धव बाधा उपस्थित करते है, तो समझना चाहिए कि दिवांध है। यदि धर्म–धर्माचार्य कुछ उल्टा–सीधा तर्क देते हैं तो समझ लेना चाहिए कि इन्हीं ढोंगी और ढोंगियों ने संसार को सरल और सच्चे पथ पर चलने नहीं दिया। यदि राज्य और राजसी नेता अपनी कानूनी रुकावटें डालते हैं तो हजारों बार की तजुर्बा की हुयी बात है कि महानदी के वेग की तरह घुमक्कड़ की गति को रोकने वाला दुनिया में कोई पैदा नहीं हुआ। बड़े–बड़े कठोर पहरे वाली राज्य– सीमाओं को घुमक्कड़ ने आँख में धूल झोंककर पार कर लिया। मैनें स्वयं ऐसा एक से अधिक बार किया है। (पहली तिब्बत यात्रा में अंग्रेजों, नेपाल– राज्य और तिब्बत के सीमा रक्षकों की आँख में धूल झोंककर जाना पड़ा था।)

संक्षेप में हम कह सकते हैं, कि यदि कोई तरुणी तरुण घुमक्कड़ धर्म की दीक्षा लेता है यह मैं अवष्य कहूंगा कि यह दीक्षा वही ले सकता है, जिसमें बहुत भारी

मात्रा में हर तरह का साहस है – तो उसे किसी की बात नहीं सुननी चाहिए, न माता के आँसू बहने की परवाह करनी चाहिए न पिता के भय और उदास होने की, न भूल से विवाह लायी अपनी पत्नी के रोने–धोने की फिक्र करनी चाहिए और न किसी तरुणी को अभागे पति के कलपने की। बस षंकराचार्य के षब्दों में यही समझना चाहिए – '' निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतः को विधिः को निशेध :'' और मेरे गुरु कपोतराज के वचन को अपना पथप्रदर्षक बनाना चाहिए

सैर कर दुनिया की गाफिल,

जिन्दगानी फिर कहाँ? जिन्दगी गर कुछ रही, तो

नौजवानी फिर कहाँ।

इस्माइल (मेरठी)

दुनिया में मानुश– जन्म एक बार ही होता है और जवानी भी केवल एक बार ही आती है साहसी और मनस्वी तरुण–तरुणियों को इस अवसर से हाथ नहीं धोना चाहिए। कमर बाँध लो भावी घुमक्कड़ो!

संसार तुम्हारे स्वागत के लिए बेकरार है।

5. दिनकर की डायरी

(डायरी)

रामधारी सिंह 'दिनकर'

हिन्दी निबन्ध एवं अन्य विधाएँ.

2 जनवरी, 1961 (दिल्ली)

कल रात 'उर्वषी' काव्य पूरा हो गया। लगता है, माथे पर से एक बोझ उतर गया। पहले कवि चाहता है कि कविता मुझे पकड़ ले और जब कविता उसे पकड़ लेती है, तब कवि से न सोते बनता है, न जागते बनता है। अधूरी कविता क्षण–क्षण उसके दिमाग में सुई चुभौती रहती और जब तक कविता पूरी न हो जाय, कवि दिन–रात परेषानी में पड़ा रहता है रचना का यह दर्द 'उर्वषी' के प्रसंग में मैंने आठ वर्श लगातार भोगा है।

सन् 1953 ई. में आकाषवाणी के पक्स, श्री कर्त्तारसिंह दुग्गर ने मुझसे कहा था कि रेडियो से प्रसारित करने के लिए आप हमें कोई पद्य–नाटक लिखकर दीजिए।

'उर्वषी' का आरंभ

दुग्गर जी के उसी अनुरोध से था और उसका प्रथम अंक रेडियो से हुआ

प्रसारित हो जाने के बाद मैने कहा, दुग्गर प्रसारित भी हुआ था। किन्तु प्रथम अंक के जो अब इसका आगे का अंष मैं रेडियो की दर्षश्ट से नहीं लिखूँगा। इस काव्य के भीतर मुझे बहुत बड़ी सम्भावना दिखाई देने लगी है। और कविता उसी राह

से चलेगी, जिस राह से चलना चाहेगी। अतएव रेडियो से प्रसारण की बात वहीं खत्म हो गयी।

इस काव्य की रचना में मुझे कठिनाई हुई है, उतनी कठिनाई किसी अन्य काव्य की रचना में नहीं हुई थी। कविता जहाँ आकर रूक गयी, उसे वहाँ से आगे ले चलने का रास्ता दो–दो वर्श तक नहीं सूझा। इस काव्य की पाण्डुलिपि और अन्य सामग्री को लिए हुए मैं कहाँ–कहाँ नहीं घूमा हूँ? यहाँ दिल्ली में कभी जयदयाल जी के घर में जो छिपाता था, कभी चरतराम जी के घर में। एक बार सारी सामग्री के साथ कृमीर चला गया था, लेकिन कविता की एक पंक्ति भी नहीं बनी। एक बार रांची के राय बहादुर हरखचंद के बगीचे में डेरा डाल दिया था वहाँ कुछ थोड़ा काम हुआ लेकिन ज्यादा काम सन् साल में हुआ और वह काम आखिर को दिल्ली और पटने में हुआ।

सन् साठ में मैं बीमार हो गया था और लगता था कि संभव है, अब चल देना पड़े। मगर उर्वषी को पूरा किये बिना मैं मरना नहीं चाहता था। इसलिए कविता की रचना मैने जबर्दस्ती षुरू कर दी। फिर यही जबर्दस्ती प्रेरणा में बदल गयी और कविता ने मुझे जोर से पकड़ लिया। किन्तु, जभी मैं गंभीर समाधि में जाता, मुझे मूर्छा आ जाती। यह बात मैने पटने के डाक्टर घोशाल साहब से कही। उन्होंने कहा, 'अभी काव्य–रचना छोड़ दीजिए।' फिर जब मैने बहुत आग्रह किया कि 'अब तो प्राण मोह छोड़कर इस कविता को पूरा करना है, तब उन्होंने कहा कि मूर्छा आने पर थोड़ा–सा मधु चाट लिया करें। इस प्रकार प्राणों का संकट झेल कर मैनें इस काव्य को पूर्ण कर दिया। आज मैं बहुत खुष हूँ, बहुत हल्का हो गया है। उर्वषी के कम्पोजीषन से मुझे बहुत संतोश है। यह काव्य जिस रूप में लिखा गया है, उसे उससे अधिक सुन्दर रूप से लिखना मेरी षक्ति के बाहर की बात थी। मुझे लगता है, मैनें इसकी रचना नहीं की है, यह अदृष्य में कहीं लिखा–लिखाया पड़ा हुआ था। मैनें मात्र उसका अनुसंधान कर लिया है।

आज पन्त जी को उर्वषी के बारे में मैनें जो पत्र लिखा है, उसमें अपना विष्वास भी मैने लिख दिया है।

20 जनवरी, 1961 (बम्बई)

मैं घोर चिन्तना में धँप कर
पहुँचा भाशा के उस तट पर,
था जहाँ काव्य यह धारा हुआ,
सब लिखा–लिखाया पड़ा हुआ। बस, झेल गहन गोते का सुख
ले आया इसे जगत् सम्मुख ।

10 जनवरी को हवाई जहाज से बंबई आया तब से प्रायः रोज ही धर्मयुग के दफ्तर जाता हूँ। पुस्तक की साज–सज्जा के विशय में डाक्टर धर्मवीर भारती बहुत रुचि ले रहे हैं। श्री जयचन्द्र जैन से दो बार बातें हुई हैं। आज मै इस निष्चय पर आ गया कि पुस्तक को उदयांचल से ही निकालना चाहिए

21 जनवरी, 1961 (दिल्ली)

वायुयान से बंबई से दिल्ली आया। आज ही महारानी एलिजाबेथ भी दिल्ली आयी हैं। यहाँ से वे जयपुर जायेंगी और राजस्था के राजाओं से मिलेंगी। राजाओं के साथ कुछ उद्योगपति भी रानी से मिलेंगे। इसीलिए श्री श्रेयांस जी भी दिल्ली आये हुए हैं। वे भी जयपुर जायेंगे।

नागार्जुन की एक कविता निकली है, जो सभी की जबान पर है

22 फरवरी, 1961

रानी, आओ, हम ढोयेंगे पालकी।

यही हुई है राय जवाहर लाल की।

श्री मन्मथनाथ गुप्त ने तय किया कि 'उर्वषी' में जो चित्र दिये जायेंगे, उन चित्रों का स्केच ज्योति भट्टाचार्य तैयार करेंगे। आज मन्मथ बाबू ने मुझे ज्योति बाबू से मिला दिया।

25 फरवरी, 1961

श्री नरेन्द्र गोयल आये और कुछ रुपये ले गये। वे 'संस्कृति के चार अध्याय' का अंगरेजी अनुवाद तैयार कर रहे हैं।

षाम को दद्दा (मैथिली षरण) का फोन आया कि नाटक चलना है वे चिरंजीत के साथ आये और मुझे नाटक में ले गये। लेकिन उससे मुझे संतोश नहीं हुआ। रात में मैं 'क्वीन आव् षेवा' नामक फिल्म देखने चला गया।

2 मार्च, 1961 – (दिल्ली)

फिल्मों पर राश्ट्रपति जो एवार्ड देते हैं, उसकी कमेटी की बैठक चल रही है। सुबह नाष्ता करके फिल्म देखना, दोपहर में फिल्म देखना फिर रात में फिल्म देखना। यदि डॉक्यूमेंटरी को भी गिनें, तो दिन–रात मिला कर 25 फिल्में देखनी पड़ती हैं। फिल्म देखने की भूख ही मिटती जा रही है।

7 मार्च, 1961 (दिल्ली)

आज भोर आठ बजकर पच्चीस मिनट पर प. गोविन्द वल्लभ पन्त जी का देहान्त हो गया। मैथिली षरण जी और रायकृश्ण दास जी मेरे घर पर आये। फिर हम तीनों पन्त जी के अन्तिम दर्षन के लिए गये। पण्डित जी आज देष से बाहर हैं। सो भीड को षान्त रकने के लिए जो काम वे करते थे, वह काम आज श्रीकृश्ण मेनन ने किया।

15 मार्च, 1961 (दिल्ली)

आज षाम को श्री नरेन्द्र षर्मा, श्री अषोकजी, श्री महावीर अधिकारी और श्री गोपाल कृश्ण कौल आ गये। उन्हें 'उर्वषी' के अन्तिम दो अंक मैने उस प्रकार पढ़कर सुनाये, जैसे नाटक को पढ़ा जाना चाहिए।

16 मार्च, 1961 (दिल्ली)

श्री महावीर अधिकारी के साथ चाय पीने को गया। फिर अधिकारी, रामावतार त्यागी, बालस्वरूप राही और कौल मेरे घर पर आ गये। उन्हें 'उर्वषी' का तीसरा सर्ग सुनाया। सब लोगों का विचार हुआ कि बस, यह तीसरा सर्ग ही है, जो नाटक में नहीं खपता है। बाकी सभी अंक अभिनेय है।

22 मार्च, 1961 (पटना)

पटना आया हुआ हूँ। आज बिहार राश्ट्रभाशा परिशद् का वार्शिकोत्सव काका साहेबजी कालेलकर के सभापतित्व में मनाया गया। मैने काका साहब का परिचय देते हुए जो छोटा–सा भाशण दिया, उसे जनता ने बहुत पसंद किया। लोग खूब हँसे ।

षाम को आचार्य जानकी वल्लभ षास्त्री मुझसे मिलने घर पर आये। लेकिन ऐन वक्त पर बिजली फेल हो गयी। अतएव षास्त्री जी को 'उर्वषी' का कोई अंष सुना नहीं सका। केवल अँधेरे में बैठे हम दोनों बातें करते रहे।

23 पार्च, 1901 (घटना)

षाम को मासिक पत्रिका 'ज्योत्सना' के समारोह में गया। भाशण देते समय मुँह से कोई खट्टी बात निकल गयी। षिवेन्द्र को कश्ट हुआ होगा। मुझे भी ग्लानि और पष्चाताप है। षिवेन्द्र ज्योत्सना को ठीक ही तो निकाल रहा है। पत्रिका और निकाली भी कैसे जा सकती है? मुझे कम से कम इतना तो ध्यान रखना चाहिए था कि षिवेन्द्र मेरा दिली दोस्त है और उसने अपना जीवन साहित्य को दे रखा है।

30 मार्च, 1961 (दिल्ली)

आज राज्य सभा के सत्र का अन्तिम दिन था। कैनिंग लेन से साउथ एवेन्यू तक पैदल गया। फिर टैक्सी लेकर अज्ञेय जी से मिलने चला गया। हिन्दी में अज्ञेय ही हैं, जो विष्व – साहित्य की नयी प्रवत्ति के सम्पर्क में रहते हैं। बोलते वे बहुत कम हैं, षायद इसीलिए वे षीलवान दिखायी देते हैं। आज भी वे कम ही बोले, ज्यादा बातें मैं ही करता गया।

खंडवा के श्री विशणु खरे ने इलियट के 'वेस्ट लैण्ड' का हिन्दी में 'मरु प्रदेष' के नाम से अनुवाद किया है। इस अनुवाद के प्रकाषक है कटक के श्री प्रफुल्लचन्द दास। पिछली बार जब मैं कटक गया था प्रफुल्ल बाबू मुझे अपने दफ्तर में ले गये। हिन्दी में श्रेश्ठ पुस्तकें निकालने का उत्साह उनमें बहुत दिखायी पड़ा। उनका आग्रह था कि 'मरु प्रदेष' की भूमिका मैं ही लिखूँ। भूमिका मैंने पिछले

साल सितम्बर के आरम्भ में ही भेज दी थी। किताब छपकर आज आयी है। छपाई स्वच्छ हैं तथा गेट–अप भी मनोरम और गम्भीर है।

1 अप्रैल, 1961 (दिल्ली)

कल से हिन्द–पाक सम्मेलन का जलसा चल रहा है। आज विज्ञान भवन में उसका साहित्य–समारोह मेरे सभापतित्व में हुआ। मैं जब बोलने को खड़ा हुआ पष्चिमी पाकिस्तान के कवि हफीज जलंधरी ने कहा 'दिनकर साहब, आप उर्दू में बोलें।' यह सुनकर पूर्वी बंगाल के कवि जसीम उद्दीन खड़े हो गये और बोल उठे, नो, नो, दिनकर, यू मस्ट स्पीक इन बैंगाली'। हफीज और जसीम, दोनों मेरे मित्र हैं। मैं पसोपेष में पड़ गया। निदान, मैंने कहा, अगर यह बात है, तब तो मुझे अंग्रेजी में बोलना पड़ेगा। और अपना भाशण अंग्रेजी में ही दिया।

षोकत थानवी ने अपने भाशण में कहा, पाकिस्तान में हमें उर्दू को आसान बनाना चाहिए। हिन्दुस्तान में आप हिन्दी को आसान बनाने की कोषिष करें।

थानवी ने जब भाशण खत्म किया, मैने उसके कान में कहा, 'मानते हो न कि गाँधी जी अभी भी हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के लिए रलेवेंट हैं।

उसने कहा 'हाँ भाई, सो तो है।

हफीज के साथ उनकी बेटी भी आयी हुई थी। जब हम लोग सभा से निकलने लगे जसीम से हफीज से कहा, वाह यार तुमने अपनी गर्ल फ्रेण्ड से मेरा परिचय क्यों नहीं कराया?

हफीज ने कहा? 'मैं उस तरह का आदमी नहीं हूँ। जिसे तुम मेरी गर्ल फ्रेण्ड समझते हो, वह मेरी बेटी है।'

जसीम षर्म के मारे गड़ गया।

17 अप्रैल, 1961 (दिल्ली)

रात एक सपना देखा कि अपने गाँव सिमरिया और पास के गाँव बीहट के बीच मैं खेतों के ऊपर आकाष में उड़ रहा हूँ। इतने में पष्चिम की ओर से एक आदमी भैंसे पर चढ़ा हुआ आया और जहाँ मैं उड़ रहा था, वहाँ आकर रुक गया। लगा, जैसे भैंसा और मनुश्य, दोनों मुझे पहचानते हैं। उनसे बात करने को मैं आकाष से परथ्वी पर उतर आया और उस आदमी से मैनें पूछा, क्या फिल्म बनाने आये हो? उस आदमी ने कहा, 'हाँ, ब्रजदेव षर्मा की ओर से।' बस इतने में नींद खुल गयी। स्वप्न में भय का भान नही हुआ। लेकिन जागने पर मैं इस स्वप्न पर चिन्ता करने लगा।

20 अप्रैल, 1961 (दिल्ली)

साहित्य अकादमी एकोत्तर षती का हिन्दी अनुभव करावा रही है। अनुवादक हैं हजारी प्रसाद द्विवेदी, भवानी प्रसाद मिश्र और मैं। कृपलानी ने बताया कि

गुरुदेव की इच्छा थी कि उनकी कविताओं का अनुवाद पद्य में नहीं किया जाय। इसलिए हम तीनों व्यक्ति अनुवाद गद्य में ही कर रहे हैं। गद्य क्या इसे पद्यगन्धी गद्य कहना चाहिए।

5 मार्च, 1963 (दिल्ली)

बहुत–सी नारियाँ इस भ्रम में रहती हैं कि वे प्यार कर रही हैं। वास्तव में प्रेम किये जाने के कारण आनन्द से भरी होती हैं। चूँ कवे इनकार नहीं कर सकतीं, इसलिए यह समझ लेती है कि हम प्रेम कर रही है। असल में यह रिझाने का षौक है, हल्का वयभिचार हैं। प्रेम का पहला चमत्कार व्यभिचार को खत्म करने में है, पार्टनर के भीतर सच्चा प्रेम जगाने में हैं।

8 मार्च, 1963 (दिल्ली)

ऐसी औरतें हैं जिन्होंने प्रेम किया ही नहीं है लेकिन ऐसी औरते कम हैं, जिन्होंने प्रेम केवल एक ही बार किया हो।

जब प्रेम मरता है, तब बची हुई चीज ग्लानि होती है, पष्चाताप होता है।

प्रेम आग है, जलने के लिए उसे हवा चाहिए। आषा और भय के समाप्त होते ही प्रेम समाप्त हो जाता है।

सुखमय विवाहित जीवन सम्भव है। स्वादमय विवाहित जीवन सम्भव नहीं है।

प्रेम का नाम सुनते, तो बहुत लोग है, जो प्रेम में नहीं पड़ते कवियों और उपन्यास–लेखकों प्रेम का प्रचार किया है।

7 मई, 1963 (दिल्ली)

जो पद हमें नहीं मिला है, अपने को उसके योग्य सिद्ध करना आसान है, किन्तु जिस पद पर हम है, उसकी योग्यता सिद्ध करना बड़ा कठिन काम है। सज्जन तो गुणों का आदर करते हैं, मगर जनता सौभाग्य का आदर करती है।

छल–पूर्ण प्रषंसा से उपयोगी आलोचना श्रेश्ठ है, मगर कम ही लेखक उसे पसंद करते हैं।

महापुरुशों की कीर्ति उन साधनों से नापी जानी चाहिए, जिनका प्रयोग कीर्ति पाने के लिए किया गया है।

एकान्त में भी इस प्रकार का आचरण, मानो, सारा संसार देख रहा हो, पुण्य की पहचान है। कुछ लोग लोकप्रिय गीत के समान होते हैं। ऐसे गीत को कुछ दिन गाकर लोग फिर सदा के लिए भूल जाते जैसे–जैसे उम्र बढ़ती है, आदमी के ज्ञान के साथ उसकी मूर्खता में भी वषद्ध होती है।

विरह छोटे प्रेम को संकीर्ण और बड़े प्रेम को विस्तरत बनाता है। तूफान दिये को बुझा देता है, किन्तु होली की आग को खूब भड़काता है।

जिसे प्यार करना छोड़ दिया, उसे फिर से प्यार करना मुष्किल काम है। जवानी बुद्धि के बखार का नाम है।

जो प्रसिद्धि तुम्हें मिली है, वह इस बात की प्रतिज्ञा है कि तुम और भी प्रसिद्धि प्राप्त करोगे।

8 मई, 1963 (दिल्ली)

हम उन्हें खूब चाहते हैं, जो हमारी प्रषंसा करते हैं, किन्तु जिनकी हम प्रषंसा करते है, उन्हें हम चाहते भी है, या नहीं, यह बताना बहुत कठिन है।

रुपये से घष्णा करने वाले लोग भी उसे छोड़ना नहीं चाहते।

लोग छोटे दोशों को यह दिखलाने को स्वीकार करते हैं कि उनमें बड़े दोश नहीं है।

औरतें अपनी वासना को काबू में ला सकती हैं मगर अपनी रिझाने की प्रवत्ति को वे रोक नहीं सकतीं।

प्रेम में पागल हो जाना किसी हद तक ठीक है, बेवकूफ बनाना बिलकुल ठीक नहीं है।

कुछ लोगों के मरने पर विलाप कम होता है, लेकिन लोग याद उन्हें ज्यादा करते हैं। और कुछ ऐसे होते है, जिनके मरने पर विलाप बहुत होता है, लेकिन लोग याद उनकी कतई नहीं करते।

ऐसी सती नारियाँ कम हैं, जो अपने जीवन को बस्वाद नहीं मानती हों। ये नारियाँ उस खजाने के समान है, जो सुरक्षित इसलिए है क्योंकि वह गड़ा हुआ है। यानी इसलिए कि उसका पता किसी को चला ही नहीं है।

टुच्चे लोगों की एक पहचान यह भी है कि जिसके समान बनना उसकी सामर्थ्य के बाहर की बात है, उसकी वे हमेषा निन्दा करते हैं।

16 45, 1963 (मिबबपस)

कौन आदमी है, जो सचमुच महान् गुणों के साथ पैदा हुआ? पहचान यह है कि उसमें इर्श्या है या नहीं।

कम ही औरतें ऐसी हैं, जो मित्रता से संतोश मानती हैं। जिन्हें प्रेम का रस मिल गया है, उन्हें मात्र मित्रता फीकी लगती है।

षत्रु का अनुमान अपने बारे में मेरे अनुमान की अपेक्षा अधिक सत्य है। आदि काण्ड में नारी प्रेमी से प्रेम करती है। उसके बाद वह प्रेमी से नहीं, प्रेम से प्रेम करने लगती है।

वह अपरिचित व्याख्या का दिन, जब षब्द षब्दों के ठीक क्रम से अलग हो जाएंगे, जब अर्थ सूखे बादल बनकर बिखर जायेंगे।

मष्त्यु जिसका पीछा कर रही हो, वह कैसी—कैसी बातें सोचता है।

7 सितम्बर, 1963 (दिल्ली)

पण्डित रामानन्द षर्मा आए हुए हैं, दुःखी, जर्जर, बीमार, विशण्ण ।

यहाँ दिल्ली में भी परिवार से घिरा हूँ। षिवसागर, आदित्य, भोला, षोभा, सभी बहुत ख्याल रखते हैं। फिर भी बच्चन की ये पंक्तियाँ रह–रह कर मन में गूँजती रहती हैं।

संघर्श से टूटा हुआ,
दुर्भाग्य से लूटा हुआ,
परिवार से छूटा हुआ,
कितना अकेला आज मैं।

10 सितम्बर, 1963 (दिल्ली)

टामस मन की 'डेथ इन वेनिस' पढ़ी। गुस्तेव उस उम्र का कलाकार है, जब कलाकार कि लिये नवीन बना रहना कठिन हो जाता है। जो कुछ वह चाहता है, उसे वह लिख नहीं पाता और जो कुछ वह लिखता है, उससे उसे संतोश नहीं होता। लेखन की प्रक्रिया से उसे वह आनन्द नहीं मिलता, जो पहले मिलता था।

सार्वभौम समादर केवल उसी कलाकार का धन है, जो जीवन के प्रत्येक सोपान पर कुछ अच्छी सरश्टि करता आया है।

गुस्तेव काल के भीतर उन लोगों का प्रजक्ता था, जो थकावट के आखिरी छोर पर भी काम करते हैं, जो ओवर–बर्डन्ड हैं। जनकी षक्ति समाप्त है, मगर फिर भी जो अपना सटैण्डर्ड गिरने नहीं देते। वे लोग, जिनके पास साधन का अभाव है, जो षनैः–षनैः आगे बढ रहे हैं, जो सारे दिन की रुक्षता में रस के दो एक क्षणों का ही उपयोग कर पाते हैं।

गुस्तेव उनका कवि है जो किस्मत की नाक पकड़कर उसे अपनी ओर घुमा लेते हैं।

22 सितम्बर, 1963 (दिल्ली)

मेरे भीतर एक आग है जो बुझती नहीं है। तो फिर वह मुझे जला क्यों नहीं डालती हैं इस आग के रंगीन धुएँ में खुषबू है। इस धुएँ में पुश्पमुखी आकातियाँ चमकती हैं। ' सौन्दर्य के तूफान में बुद्धि को राह नहीं मिलती। वह खो जाती है, भटक जाती है। यह पुरुश की चिरन्तन वेदना है।

मैं धर्म से छूटकर सौंदर्य पर और सौंदर्य से छूटकर धर्म पर आ जाता हूँ। होना यह चाहिये कि धर्म में सौन्दर्य और सौन्दर्य में धर्म दिखाई पड़े।

सौन्दर्य को देखकर पुरुश विचलित होता है। नारी भी होती होगी। फिर भी सत्य यह है कि सौन्दर्य आनन्द नहीं समाधि है।

15 सितम्बर, 1963 (दिल्ली)

विपत्ति की चोट जब असह्य हो जाती है, आदमी जीवन के मूल से सटना चाहता है। जीवन का मूल यानि काम। नारी नर को पकड़कर जीना चाहती है, और नर नारी का अवलंब खोजने लगता है।

मेरी ऐसी अनेक कविताएँ हैं, जो भागे हुए, सत्व से न जनम कर कल्पना से जनमीं थीं। मगर आगे चलकर वे सत्य हो गयीं, मुझी पर सत्य हो गयीं। उदाहरण के लिये 'उर्वषी' की ये पक्तियाँ–

असफलता में उसे जननी का वक्ष याद आता है।
संकट में युवती का षय्याकक्ष याद आता है।
भ्मंज में अमित षान्त हो पुरुश खोजता विह्वल, श्रमित–
जिमत धरकर सोने को क्षण भर नारी का वक्षस्थला
आँखो में जब अक्ष उमडते, पुरुश चाहता चुंबन
और विट में रमणी के अंगों का माहाविना

5 अक्टूबर, 1963 (दिल्ली)

सुखी प्रेम का इतिहास नहीं होता। प्रेम का इतिहास रोमास का इतिहास है। और रोमांस तब जन्म लेता है, जब प्रेम में बाधा पड़ती है, रुकावट आती है, विषेशतः तब, जब प्रेम दुःखान्त होता है। जिस प्रेम में आतुरता है, तेजी है, छटपटाहट और बेचौनी है, वह विपत्ति ला कर रहेगा।

कहते हैं, यूरोप और अमरीका में व्यभिचार सबसे बड़ी प्रवत्ति है। व्यभिचार न हो, तो कविता और उपन्यास में क्या रह जाता है? सारा साहित्य उस प्रेम के इर्द–गिर्द चक्कर काटता है, जो नियमों का पालन करना नहीं जानता। मनुश्य जाति की आधी से अधिक विपत्तियों का नाम व्यभिचार है।

विवर्जित के प्रति आकर्शण है, इसलिये विवाह टूटते हैं। लेकिन विवर्जित के प्रति आकर्शण में दुःख है, यह जानते हुए भी आदमी संत्रास को स्वेच्छया क्यों अपनाता है ?

6. मुंषी जी

(संस्मरण)

सियाराम षरण गुप्त

एक बालक रेलगाड़ी में बैठकर अपने पिता के साथ कहीं जा रहा था। उसके मन में क्या था, कौन जाने। पिता ने अपने सामने से पंखा उठाकर एक ओर रक्खा था कि बालक ने उसे फिर जहाँ–का–तहाँ रख दिया। एक बार हुआ, दो बार हुआ और तीसरी बार भी वही बात । तब पिता ने बालक को गहरी डाँट

बता दी। बालक सहन न कर सका। काँपते हुए खड़े होकर उसने कहा– घर से तो फुसला–फुसला कर लाये थे और अब यहाँ नाराज होते हैं! रोको गाडी, मैं यहीं उतरूंगा। पिता ने कहा–रोक दो गाडी उतारो इसे यहीं । गाडी जंगल से होकर जा रही थी. सब ओर निर्जन ही निर्जन था। दुःख और क्रोध में सब कुछ भूलकर बालक वहीं उतर पड़ने को तैयार हो गया। ऐसे समय साथ बैठे हुए अन्य युवक ने बालक को पकड़कर अपनी गोद में ले लिया। उसके आँसू पोंछे, पीठ थपथपाई, मधुर सांत्वना दी। यह युवक और कोई नहीं, श्रद्धेय मुंषी जी (राजकवि श्री अजमेरी) थे और वह बालक इन पंक्तियों का यह लेखक ।

यह घटना इतनी पुरानी है कि स्वयं मुझे याद न थी । मुंषी जी ने ही इसे सुनाया है, गोश्ठियों में बार–बार ऐसे रोचक ढंग से सुनाया है कि अब मेरे लिये यह उनकी पहली स्मषति हो गई है।

मुंषी जी हमारे परिवार के ही अंग थे। फिर भी मुझे उनकी पहली बात उस समय की याद है, जब मैं कवि बनने के लिए आतुर हो रहा था। दोहे में चौबीस मात्राएँ होती हैं, इसकी षिक्षा मुझे भैया से मिली

थी। परन्तु केवल दोहे लिखकर मेरी आत्मा तष्प्त कैसे होती ? एक दिन मैंने पता चलाया कि संस्कृत के बसन्त तिलका छन्द में चौदह अक्षर होते हैं, मात्राएँ गिनने की आवष्यक्ता नहीं। मेरे लिए यह खोज कम न थी । खोज का उपयोग भी उसी समय कर डाला। कई बसन्त तिलका लिखकर मुंषी जी के सामने रख दिये। देखकर उन्होंने पूछा– यह छन्द क्या

है? मैं संकुचित हो गया। डरते–डरते मैनें उत्तर दिया– वसन्त तिलका। वसन्त तिलका में चौदह अक्षर होते हैं। मुंषी जी ने अक्षर गिनने की आवष्यक्ता नहीं समझी। कहा–चौदह अक्षर होने से ही वसन्त तिलका नहीं होता। अक्षर एक क्रम से बिठाने पडते हैं। तुम्हारा यह छन्द तो कुछ नहीं हुआ। इसके बाद उन्होंने मेरी गलती मुझे समझा दी।

कवि बनने की मेरी लालसा तीव्र हो रही थी। सीखने के लिए सुयोग भी मेरे पास था। परन्तु सुयोग के साथ असुविधा न थी, यह नहीं कहा जा सकता यह वांछनीय न था कि घर में सब कवि–ही–कवि हो जायें। होना चाहें तो हो कैसे सकते हैं? मेरे लिये प्रबन्ध किया गया कि मैं रोकड़ बही का काम सीखूंगा। मेरा मन वहाँ भागा–भागा रहता। सोचता कि कब मौका मिले और मैं भागूँ बचूँ। एक दिन ऐसे में मुषी जी की चपेट में आ गया। मैं निष्चिंत होकर जोर–जोर से किसी कविता की आवष्ति कर रहा था। जोर–जोर से इसलिए कि कविता केवल मन के उपयोग की वस्तु है नहीं। चुपके–चुपके रसना तप्त तो होती हो कान क्यों न चाहें कि वंचित न हो। इसी जीभ और कान के अति लोभ ने उस दिन धोखा

दिया। मुंषी जी ने डाँटकर कहा– जब देखो, तब यही कामा जो बताया जाता है, वह क्यों नहीं करते? अब इस तरह पाया तो पिटोगे। मुषी जी ने कौटम्बिक हित की ही दषश्ट से ही डाटा था। उनका डाँट देना दूसरे के पीट देने के बराबर था। इसका उन्हें पूरा अधिकार भी था। परन्तु मुझे कुछ बुरा मालूम हुआ। मैं उनसे बचने की चेश्टा करता। फिर भी बचता कहाँ तक ? जब कुछ लिखता तो सम्मति और संषोधन के लिए उन्हीं के पास जाना पड़ता।

उस समय की अपनी उस कविता कृति की बात सोचकर अब आज हँसी आती है। इस समय वह किसी तरह प्रकट हो पड़े, तो कह नहीं सकता, लज्जा से कितने नीचे गड़ जाऊँ। आज मैं चाहूँ वैसे कवि से कविता की रक्षा करके उसे रोकड़ बही के काम में लगा देना ही अच्छा पर ढीठ लडके पर बातों का असर कब होता है। उन्हीं दिनों कवि पोप के बचपन की एक बात मैंने सुनी थी। पोश के पिता उसे कविता लिखने के लिये रोकते थे। आर्थिक दर्षश्ट से पुत्र के लिये काम आषाजनक न था। एक दिन पिता ने बालक को कविता करते समय पकड़ा। जब बालक की पीठ पर बेंत पड़ने लगे, तब उसने कहा– क्षमा कीजिए पिता, क्षमा कीजिए, अब मैं कविता न लिखूँगा । पिता ने निराष होकर कहा यह तो छन्दोबद्ध कविता में बोल रहा है। मुझे यह बात बहुत रुची । उसी तरह पिटने के लिये किसी दिन की कल्पना किये बिना मैं भी न रह सका। भाग्यवष यह विपत्ति कभी सामने नहीं आई। भाग्यवष इसलिए कि यदि कभी वैसा प्रसंग आता तो समझता हूँ, आँसू तो मेरी आँख से बहुत निकलते, किन्तु कविता की एक पंक्ति निकलना भी असम्भव–सा था।

उन्हीं दिनों की एक बात बहुत याद आती है। मेरे किसी षब्द के प्रयोग पर मुंषीजी ने आपत्ति की यह अषुद्ध है। मैनें कहा– ऐसा तो श्रीधर पाठक ने भी लिखा है। मुंषी जी ने उत्तर दिया उन्होंने लिखा है तो अषुद्ध लिखा है। नकल किसी की मत करो। पाठक जी के गुण तो तुम ला नहीं सकोगे, दुर्गुण–ही–दुर्गुण तुम्हारी रचना में आ जायेंगे।

मुंषी जी को स्वछता का बहुत ख्याल था। यह भीतर हो या बाहरी भैया के साथ मेरी कविताओं भरपूर संषोधन तो वे करते ही थे, पत्र–पत्रिकाओं के लिये भेजते समय उनकी प्रतिलिपि भी प्रारम्भ में बहुत दिनों तक उन्हीं को करनी पड़ती थी। मुंषी जी जब मेरी कविताओं की पतिलिपि कर देते थे, तब मुझे ऐसा लगता था जैसे यह मेरी रचना न हो। संषोधन के लिए भैया उन्हें रोकते थे कि ऐसा मत करो, जिससे यह रचना तुम्हारी ही हो जाया मुषी जी का विचार कुछ ऐसा था कि संषोधन योग्य स्थल पर कलन न चलाना काहिली है। फिर भी उन्होंने एक बार कुछ कलम चलाई। कविता भी कुछ लम्बी थी। 'वीर बालक' के नाम से

'गष्हलक्ष्मी' में प्रकाषित हुई। उसे देखकर आचार्य द्विवेदी ने भैया को लिखा कि आपके नाम से यह कविता मैं 'सरस्वती' में दे दूँ! याद रखने योग्य कदाचित् यही पहली प्रषंसा मुझे अपने साहित्यिक जीवन में मिली। भैया ने उत्तर में लिखा मैं यह उचित नहीं समझता। वह रचना मेरी नहीं है। बाद में भैया ने और मुंषी जी ने फिर उसका संषोधन किया। पूज्य द्विवेदी जी भाशा–परिश्कार का ध्यान बहुत रखते थे। कविता 'सरस्वती' के गौरव के प्रतिकूल न पड़े इसलिए यह पुनरपि संस्कार आवष्यक समझा गया। पहले छपी हुई कविता पर ही ये नये संषोधन करके उसे भेजते समय मुंषी जी को यह संतोश हुआ था कि द्विवेदी महाराज भी देख लेंगे कि कविता पहले वैसी थी और हो गयी है अब ऐसी । पूज्य द्विवेदीजी को यह बताना न होता तो मुंषी जी वह कटी–कुटी प्रति कदापि न भेजते। इस सम्बन्ध में मेरी इच्छा और अनिच्छा को कोई सवाल न था। किसी एक जगह भी जरा–सी कट–कुट जाने पर फिर से पूरा–का–पष्ष्ठ लिखते उन्हें उस समय मैं बीसियों बार देष चुका हूँ।

मुंषी जी की इस प्रवत्ति के कारण एक बार मुझे बहुत लज्जित होना पड़ा। मैं पहली बार स्वतंत्र रूप में कानपुर गया था। जाना था मुझे काषी के लिए परन्तु कहीं बीच में ही मैं किसी के द्वारा गुम न कर दिया जाऊँ इसलिए घर से यह प्रबन्ध किया था कि कानपुर में मैं श्री गणेषषंकर जी के यहाँ सन्देहास्पद व्यक्ति की तरह हाजिरी लिखा आने के लिए उतर पहूँ और वहाँ से स्वयं स्टेषन जाकर मुझे ठीक ट्रेन पर सवार करा देंगे। मैं विद्यार्थी जी के सुखद आतिथ्य का उपभोग कर सका था। इसी समय एक सम्पादक महोदय वहाँ पधारे। मेरा परिचय पाकर उन्होंने अपने पत्र के लिए मेरी कोई कविता चाही । मेरे कुछ कहने से पहले ही विद्यार्थी जी ने कहा, इन्हें कविता लिखनी तो आती नहीं कम–कम से मैने इनके हाथ की लिखी हुई कोई कविता नहीं देखी। सचमुच हाथ से लिखी कोई कविता तब तक उन्होंने नहीं देखी परन्तु फिर भी उस बात ने मुझे चोट पहुँचाई। किसी नवीन 'कवियषः प्रार्थी से कोई सम्पादक स्वतः प्रेरित होकर, कविता के लिए प्रार्थना करे और ठीक उसी समय बीच में आकर कोई अन्य व्यक्ति मामला बिगाड़ देने पर उतारू हो, तब कुछ–न–कुछ बुरा लगने की बात है अवष्य! तत्काल असहिश्णु होकर मैनें उत्तर दिया– भैया की कविता की प्रतिलिपि भी प्रायः मुंषीजी ही करते हैं। आपने उनकी लिखी भी कोई कविता न देखी होगी। बात मुँह से निकल चुकी, तब जान पड़ा कि मेरा तीखा स्वर निकले हुए षब्दों से कुछ अधिक प्रकट कर बैठा है। मैं लज्जित हुआ। वास्तव में विद्यार्थी जी उन महोदय को टालना चाहते थे। उनके कविता माँगने का ढंग उन्हें षिश्टाचार सम्मत नहीं जान पड़ा था।

मुषीजी सत्कवि थे, भाशा पर उनका अधिकार असाधारण था। ब्रजभाशा, राजस्थानी और आधुनिक हिन्दी में समान रूप से लिख सकते थे। वर्ण्य विशय का चित्र–सा खींच देने की षक्ति उनमें विलक्षण थी। कवित्व उनके लिए स्वाभाविक होने के कारण ही सम्भवतः उसकी ओर वे यथोचित ध्यान नहीं दे सके। स्वतः लिखने की अपेक्षा दूसरों की रचना में संषोधन करने और उन्हें उचित सलाह देने में ही उनके कवित्व का सन्तोश हो जाता था। कोई नया कवि उनके पास आता, तो उसके लिए अपना यथेश्ट समय देने में उन्हें कभी संकोच न होता था। इसी से वे लिख थोड़ा सके हैं, परन्तु जो कुछ उन्होंने लिखा है, उसमें उनके विषेशत्व की छाप है। लिखते भी बहुत षीघ्र थे। एक दिन कहीं जाते–जाते उन्होंने एक बड़े छन्द में पचास–साठ पंक्तियाँ तैयार कर डालीं। जाकर जब उन्होंने मुझे सुनाया तो मैने कहा यह ठीक नहीं है। इन पंक्तियों का बोझा मस्तिश्क से उतार कर कागज पर रख दीजिए। सम्भव है, इस

तरह के अनेक अनावष्यक बोझों के कारण ही आप लिखने की ओर समुचित ध्यान नहीं दे पाते। मुंषी जी ने मेरी बात मानकर यह कविता जितनी उस समय तैयार हो चुकी थी, लिखकर रख ली। वह किसी कविता– पुस्तक का प्रारम्भिक भाग था। परन्तु कागज पर उतार देने से ही जैसे उनका काम पूरा हो गया। फिर वह कविता कभी पूरी न हो सकी।

एक बार प्रवास में उन्हें अवकाष मिला। बातचीत करके किसी अन्य व्यक्ति को सन्तुश्ट कर सकें, सम्भवतः यह सुयोग उस समय उन्हें न होगा। तब उन्हें सूझा कि अपने से ही बात करके अपने को सन्तुश्ट किया जाय। कविता आत्म–सन्तोश का ही पूरा नाम है। परिणाम यह हुआ कि दस–बारह दिन में ही वहीं बैठकर उन्होंने अपनी प्रसिद्ध कविता पुस्तक 'हेमला सत्ता' लिख डाली। उसी को देखकर पहले पहल मेरे मन में आया कि क्या अच्छा हो यदि मुंषी जी ऐसा ही कुछ और साहित्यिक कार्य करें। षक्ति का यथोचित उपयोग न करना नैतिक अपराध है। मैनें मुंषीजी को तंग करना षुरु किया। वे असन्तुश्ट नहीं हुए। वैसे उनका जैसा स्वभाव था, वे नाराज होकर कह सकते थे। यह बेगार अपने से नहीं होने की। उन्होंने कुछ लिखा भी, परन्तु मौजी जीव थे अधिक ध्यान न दे सके। मैं अधिक इच्छुक था। श्रेयसि केन तृप्यते। जो व्यक्ति चलते–जाते दस–दस पन्द्रह–पन्द्रह छन्द बनाने की क्षमता रखता हो उसने हजार–दो हजार पंक्तियाँ दे भी दी, तो उतने से जी किसका भर जायेगा? मेरी इस प्रवृत्ति के लिए अपने 'गोकुलदास' नामक काव्य में उन्होंने मेरे लिए इस प्रकार लिखा

अब मेरे लिए यही ठीक था कि मैं प्रेम से तुम्हारी रचनाओं का आनन्द प्राप्त करता रहताय पर तुम्हारी निरन्तर प्रेरणाओं ने मुझे इस अवस्था में भी विश्राम न लेने

दियाय उठाया, बैठाया और दौड़ाया भी मैने बहुत कहा मैं कहीं गिर–गिर पहुँगा, पर तुमने हमारी भी न मानी।''मेरे कहने से मुंषीजी ने लिखने की ओर जो थोड ़ा–बहुत ध्यान दिया, उसे मैं अपनेलिए बहुत बड़े गौरव की बात समझता हूँ। मेरे इस उत्पीड़न का उल्लेखकरते–करते वे गद्गद हो उठते थे। उनका हृदय ऐसा ही कोमल, सरस औरभावुकता से भरा था।

इकाई – 13 रामधारी सिंह 'दिनकर'

उनकी सूझबूझ विलक्षण थी। बातचीत में उनका प्रत्युत्पन्नमतित्व स्वयं देखने और रस लेने की वस्तु थी। आवष्यक होने पर परन्तु बात करते–करते छन्द–रचना करके श्रोता को चकित कर देना उनके लिए साधारण बात थी। आषुकवितयों की कविता में स्थायित्व का गुण प्रायः नहीं देखा जाता। फसल के पौधों की तरह आई और बह गई। परन्तु मुंषी जी की कविता की बात दूसरी है। बड़े–बड़े साहित्यमर्मज्ञों को मुग्ध करने का गुण उनमें था। मैं उस समय वही बैठा था। आचार्य द्विवेदीजी ने उन्हें आज्ञा को कुछ अपना हाल सुनाओ। मुंषी जी ने अपने कुछ कवित्त पढ़े सुनकर द्विवेदीजी बहुत प्रभावित हुए। कहा– आपने भूशण को मात कर दिया। पास ही मार्मिक समालोचक पण्डित रामचन्द्रजी षुक्ल बैठे थे। उन्होंने कहा– भूशण में भाशा की ऐसी स्वच्छन्दता और संस्कार नहीं मिल सकता।

कहीं बाहर जाते थे, तो वहाँ से मेरे लिए लम्बे–लम्बे पत्र लिखा करते थे। उनकी इच्छा यही रहती थी कि जो कुछ आनन्द का उपयोग उन्हें हो उसका लाभ हम सबके भाग में भी आना चाहिए। वे पत्र बार–बार पढ़ने की वस्तु होते थे।

–मुषी जी ने आने जीवन में काफी उतार–चढ़ाव देखे थे। जब उनके पिता की मष्त्यु हुई, तब उनकी अवस्था सोलह वर्श की थी। एक साथ हो उस समय दुर्बल कन्धों पर गएहस्थी का जोष आ पड़ा था। उस समय जीविका के लिए उन्हें दूर–दूर तक ऊँट की सवारी साथ लेकर भ्रमण करना आवष्यक हुआ। उस भ्रमण में उन्हें न जाने कितने भिन्न–भिन्न प्रकृतियों के व्यक्ति मिले, न जाने कितने–कितने हर्श–विशाद और आषा–निराषा के प्रसंग उनके सामने आए। उनकी स्मरण षक्ति इतनी तीक्ष्ण थी कि वर्शों बीत जाने पर भी साधारण–से–साधारण बात उन्हें याद रहती थी। उनकी स्मषति पटल पर ये सब प्रसंग आज भी उसी दिन की ताजगी से अंकित थे। मैने कहा–अपना भ्रमण– वष्तान्त आत्मकथा के साथ लिख डालें, तो मैं समझता हूँ, हिन्दी में ये चीज बेजोड़ होगी। उन्होंने टाल–टूल की, परन्तु मेरा ख्याल है, मेरा प्रस्ताव उन्हें पसंद आ गया था। फिर भी ऐसे किसी काम के लिए उन्हें बार–बार प्रेरित करना आवष्यक था। उनकी मष्त्यु के कुछ ही दिन पहले जब मैनें फिर वही अनुरोध उनसे किया तब मुझे आषा हुई थी कि अब की

बार कदाचित् उन्हें इस काम पर बिठा सकूँगा। एक बार उन्हें बिठा भर देने के बाद कठिनाई न थी । परन्तु किसे मालूम था यह बात होने को न थी ।

स्वर्गीय प्रेमचन्द्र जी की आत्मकथा के लिए भी मैं बहुत उत्सुक था उन्होंने मेरा अनुरोध मान भी लिया था। परन्तु न तो उन्होंने अपनी आत्मकथा लिख पाई और न मुंषीजी ने हो। कदाचित् नियम ऐसा है कि हम लोग जिस वस्तु के लिए बहुत उत्सुक हों वह प्रायः हमारे हाथ नहीं पड़ती।

मुंषीजी बीच–बीच में कहा करते– अब मैं वष्द्ध हो गया हूँ, मुझसे काम नहीं बन सकता। यह वष्द्ध होने की भी कैसी मनहूस बात है! मै कहता आप वष्द्ध कैसे हो गये? मैं आपके सामने बच्चा हूँ, आप अधिक–से–अधिक तरुण हो सकते हैं, यदि किषोर न रहना चाहें। आज जब वे हम लोगों के बीच में से चले गये–तब भी पन यह मानने के लिए तैयार नहीं होता कि वे वष्द्ध हो गये थे। संसार में प्रायः अकाल मष्त्यु ही देखी जाती है। मुंषी जी के सम्बन्ध में तो मष्त्यु किसी समय भी ऐसी ही मालूम होती ।

खरी बात कहने में चूकते उन्हें कभी नहीं देखा गया। सत्य के लिए वे अपनी स्वाभाविक मष्दुता और अपने हानि–लाभ का भी परित्याग कर देते थे। द्विवेदी अभिनन्दन के उत्सव का सभापतित्व करने ओरछा के महाराजा साहब काषी आये हुए थे। वहाँ द्विवेदीजी के किसी प्रष्न के सिलसिले में महाराज ने अनेक सम्मानित विद्वानों की गोश्ठी में कहा था कि मुंषी सत्य के लिए किसी की परवाह नहीं करते। कभी–कभी मुझसे इस तरह झगड़ जाते हैं कि मैं ही जानता हूँ।

साहित्य की अपेक्षा अनुश्य अपने निजी जीवन में अधिक स्पश्टता से व्यक्त होता है। मुंषीजी के संसर्ग में थोड़ी देर के लिए जो भी व्यक्ति आया वह उन्हें कभी नहीं भूला। दो चार बातें करके ही वे किसी को अपनी ओर आकर्शित कर लेते थे। मुंषीजी जन्मना मुसलमान होकर भी संस्कारतः वैशणव थे। प्रायः लोगों को विष्वास न होता था किवे मुसलमान हैं। हिन्दू–धर्म में उनकी आस्था ऐसी अटल थी। भक्तिरस की कविता से तुरन्त ही उन्हें अश्रुपात होने लगता था। भैया उन्हें कोई रचना सुना रहे हैं और उनकी आँखों से अजस्र आँसुओं की धारा बह रही है। ऐसी स्थिति में अनेक बार ऐसा हुआ है कि कविता की अपेक्षा मेरा हृदय उनके आँसुओं से अधिक द्रवित हुआ। मुझे बार–बार इसका अनुभव हुआ है कि मुंषीजी जैसा सरल कोमल हृदय कहीं मुझे भी मिला होता ।

बहुत दिन पहले एक बार मुंषी जी को कोई रोग हुआ। रोग कदाचित् रक्त सम्बन्ध ी था । उससे उन्हें बहुत चिन्ता हुई। उस समय उन्होंने नियम किया कि वे प्रतिदिन नियमपूर्वक मन्दिर में

जाकर कीर्तन करेंगे। थोड़े ही दिनों में उनका रोग अपने आप दूर हो गया। उनकी श्रद्धा ऐसी ही अटल थी। उनका विष्वास था कि षुद्ध मन से जब कभी वे प्रार्थना करेंगे वह निष्चय ही होगी। एक बार उनका एक कृपापात्र किसी अभियोग में गिरफ्तार हो गया। तुरन्त मन्दिर में जाकर उन्होंने साश्रु वदन प्रार्थना की। मन्दिर से बाहर आकर उनका जी हल्का हो गया। मित्र की विपत्ति की ओर से उनको किसी तरह की षंका न रही। बाद में एक दूसरे व्यक्ति ने उन्हें सुझाया कि तुमने एक जन के लिए तो प्रार्थना की है, किन्तु उस अभियोग में एक अन्य जन भी पकड़ा हुआ है। उसके लिए भी प्रार्थना करो। मुषी जी फिर मन्दिर पहुँचें परन्तु उन्हें अनुभव हुआ यह दूसरा व्यक्ति नहीं छूटेगा इसे छूटना होता तो पहली बार में ही मैं उसे क्यों भूल जाता? अन्त में हुआ भी ऐसा ही पहले वाला व्यक्ति निर्दोश होकर छूट गया, दूसरे को सजा हुई।

हिन्दुत्व का प्रभाव उन पर इतना गहरा था कि कभी–कभी वह मुझे अरुचिकर हो उठता था। खान–पान में छुआछूत का विचार कुछ कड़ाई से करते थे। कई बार मुझे यह षिकायत हुई है कि आपने तो हिन्दुओं के दुगुर्ण भी अपना लिए।

इतने अधिक वैशणव भावापन्न होकर भी वे संकीर्ण न थे। प्रायः देखा है कि पैगम्बर साहब की स्तुति में दर्द की एक कविता गाते–गाते वे आत्म–विस्मष्त हो उठे हैं। असम्भव नहीं है, पैगम्बर साहब की प्रषंसा में भी अपने उपसाय राम और कृश्ण की ही झलक देखते हो। उनके मन में अटूट श्रद्धा और अपार भक्ति थी और प्रधान वस्तु है भी यही ।

हिन्दू संगठन के सिलसिले में लोगों ने कहा–मुंषी जी आप षुद्ध होकर हिन्दू हो जाइये। विचारों से आप हिन्दू हैं ही। उन्होंने उत्तर दिया, ऐसा मुझमें अषुद्ध क्या है, जो मैं षुद्धि कराने जाऊँ। सम्भवतः वे चे अनुभव करते थे कि हिन्दुओं में उस बल की कमी पड़ गई हैय जिसके कारण उनके बीच में अपने ही अपने बनकर नहीं रह पाते।

मुंषीजी में आत्मभिमान था और कम भी नहीं था, फिर भी वह उस सीमा तक नहीं पहुँचा था, जहाँ पहुँचकर अहंकार में बदल जाता है। बड़े–बड़े विद्वान और महापुरुश उनके गुण का आदर करते थे, राजा–महाराजाओं में उनका सम्मान था, फिर छोटे कहे जाने वाले व्यक्ति के पास बैठकर उसे संतुश्ट करने में भी उनके जी को बहुत सुख मिलता था। प्रायः ऐसा हुआ करता था कि घर से कहीं दूसरी जगह के लिए निकले हैं और बीच में ही किसी बढई, लुहार या दरजी के यहाँ जाकर जम गये। घण्टों उन लोगों का मनोरंजन करके ही तक कहीं वहाँ से उठते थे। ऐसे में प्रायः उन्हें अपने प्रधान कार्य की सुध भी भूल जाया करती थी। उनका यह गुण इतना अधिक था कि कभी–कभी इसे दोश कहने की इच्छा होती है।

यदि उन्हें समय का ध्यान होता तो वे जितना साहित्यिक कार्य कर गये हैय उससे बहुत अधिक कर गये होते। कहीं बैठे है तो बैठे ही है। रात में सोते बहुत देर से थे। रात के एक दो बजे सोना तो उनके लिए आसान बात थी। कभी—कभी घडी देखकर कहने लगते—यह गलत हो गई है अभी इतना समय नहीं हुआ।

ऐसे अवसरों पर मैं हँस उठता हूँ। परन्तु अब ध्यान में आता है कि कभी—कभी घड़ी भी गलत समय दे जाती है। क्या अभी इतना समय हो गया था कि मुंषी जी जमी हुई गोश्ठी सूनी करके

उठ जाते उनका षरीर कुछ दिनों से अस्वस्थ प्रतीत होता था। नागरी प्रचारिणी सभा, काषी में 'सूरसागर' का सम्पादन करते समय उन्हें ज्वर और खांसी की षिकायत हो गई थी। वहाँ परिश्रम और हवा पानी उन्हें सहन नहीं हो रहा था। फिर भी वे चाहते थे कि जो काम हाथ में लिया है. वह अधूरा न छूटना चाहिए। परन्तु वहाँ कुछ ऐसी बातें सामने आईं कि उन्होंने त्यागपत्र दे देना ही उचित समझा। वहाँ से लौटकर जब वे घर आये तो हमस ब लोगों को बहुत चिनता हुई। मैने कहा— जिनके असद्व्यवहार के कारण आपको त्यागपत्र देना पड़ा है, उन्होंने हमारे साथ यह बहुत बड़ा उपकार ही किया। आज भी मेरा यही विष्वास है। उस समय उन्हें जो ज्वर बस गया था, वह बहुत दिनों में सुयोग्य चिकित्सकों की चिकित्सा से ही दूर हो सका था।

उन्हें स्वस्थ देखकर आषा हो चली थी कि संकट टल गया। उनके पिता का देहावसान चहुँतर—पचहत्तर बरस की अवस्था में हुआ था। इसलिए हाल में तो किसी तरह की आषंका ही न थी। मुंषी जी इस समय पचपन वर्श के ही थे परन्तु होना तो यह था। आजीवन उन्होंने हँसाया थाय वही इस तरह रुलाते भी नही तो और कौन रुलाता। न जाने कितनी बातें मन की मन में रह गईंय न जाने कितनी आकांक्षाएं और थीं जो पूरी न हो सकीं, जहाँ की तहाँ मुरझा गई हैं।

बहुत बचपन में उनकी मनोहर कहानियाँ सुनता आ रहा हूँ। बचपन में भी कहानी सुनने के लिए उन्हें बहुत घेरा है और आज भी बच्चों को सह देकर इसके लिए सबके आगे ही जमकर बैठा हूँ। इधर मैनें कुछ कहानियाँ लिखने का लोभ किया था। जब 'अन्तिम आकांक्षा' नामक उपन्यास लिखा, तब इच्छा थी, उन्हें भेंट करके उसमें लिख दूँ कि सदैव आपसे ही कहानी सुनता आया हूँ आज भी मेरी यह धाटता क्षमा करो! किन्तु उस समय वैसा न कर पाया, इच्छा रखकर भी न कर पाया न जाने क्यों मुझे यह विष्वास हुआ कि यह रचना उन्हें पसन्द नहीं होगी। बाद में स्वयं पढ़कर जब उसके लिए उन्होंने मुझे अत्यन्त प्रोत्साहित

किया, तब अपनी भ्रान्त धारणा के लिए खेद करके ही रह जाना पड़ाय सोचा अब अपने अगले उपन्यास में ही यह इच्छा पूरी होगी। इधर मैं एक उपन्यास लिख रहा था। थोड़ा ही और लिखने के लिए और था कि भाई जैनेन्द्र कुमार अचानक यहाँ आ गये। उन्होंने उसे उतना ही देख डाला। तब मैनें यह उचित समझा कि इतना ही मुंषी जी को भी दिखा दूँ। मुंषी जी ने भी तब मेरी वह अध री हस्तलिपि प्रसन्नता पूर्वक पढ़ डाली। सोचा, अबकी बार अपनी वह वांछित धाटता मैं सन्तोश के साथ पूरी कर सकूँगा। उस समय क्या जानूँ कि अदनट में कुछ दूसरी बात है। उस समय भी उनके षरीर पर वे फोड़े मौजूद थे, जिनमें से एक ने विशाक्त होकर एक पखवारे के भीतर ही उनको हमारे बीच से छीन लिया।

मष्त्यु के एक दिन पहले जब उन्हें कुछ–कुछ बेहोषी आ चली थी, तब उन्होंने मुझसे पूछा–उपन्यास कितना और लिख चुके ? मुझे लज्जा मालूम हुयी उनकी तबियत खराब हो रही हो और मैं निष्चिन्त होकर लिखता रहूँ, यह मेरे लिए लज्जा की ही बात थी। मष्त्यु के आठ घण्टे पहले उनके लिए जब झाँसी से फिर डॉक्टर आया, मैं भी उनके सामने हुआ तब वे बहुत कम सचेत थे। फिर भी उन्होंने मुझसे यही प्रष्न किया–क्या इस समय लिख रहे थे? यही अन्तिम बात थी, जो उन्होंने ज्ञानतः मुझसे कही ।अवस्था चिन्ताजनक होने पर भी किसी को भान तक न था कि आज की ही रात ऐसी भयंकर निकलेगी, जिसका आघात जीवन भर सहना होगा।

उस दिन की बात भुलाये नहीं भूलती। इसी ज्येश्ठ की पहली प्रतिपदा का प्रातः काल था गाँव भर में एक साथ बिजली–सी–गिरी कि रात में मुंषी जी का देहांत हो गया। क्या मुंषी जी का देहांत हो गया? सहसा आँखों में आंसू भी न आ सके। एकाएक यह क्या हुआ? कल सध्या समय ही तो झाँसी के एक कुषल डॉक्टर पूर्ण निष्चिन्त रहने का आष्वासन दे गये थे। किन्तु डॉक्टर के कहने से ही क्या, आघात कितना कठोर था कि पहले से उसकी कल्पना ही असा थी न रोना आया न चिल्लाना। जैसे किसी ने सारी बोध – षक्ति छीन ली हो।

एकदम रुक जाता था।

मुंषी जी से ही सुना है कि एक कहानी कहने वाला जहाँ देखता है कि सुनने वाला एकाग्र हो गये हैं, सभी में आगे के लिए तीव्रतर उत्सुकता है बस वहीं वह असमाप्त होने पर भी अपनी कहानी समाप्त करने में उसे विषेश प्रसन्नता होती थी। मुषी जी को यह ढंग पसन्द न था। पूरे विस्तार के साथ यथार्थ से अन्त तक पहुँचकर भी और–और, फिर–फिर का समाधान करने को विष्वस्त षक्ति उनमें थी। परन्तु आज यह क्या बात हुयी ? कैसे उनकी जीवन की ऐसी बड़ी कहानी असमय ही इस प्रकार समाप्त हो गयी?

भैया ने आज्ञा की चलो मुंषी जी को कब्रस्तान तक और पहुँचा आयें। मुंषी जी के घर पहुँच कर मैं भी अपने रुक्ष आंसू न रोक सका। स्त्रियों के क्रन्दन की ध्वनि दूर से ही सुनायी दे रही थी। लोग हृदय पर पत्थर सा रखे चुपचाप इधर–उध ार जाकर तैयारी कर रहे थे, जिसमें कोई विलंब न हो। जो व्यक्ति सम्पूर्ण मोह–ममता छोड़ चुका है वह फिर हमारे किस काम का? उसे तो षीघ्र से षीघ्र उसके असली ठौर पर पहुँचा देना चाहिए। बात कुछ बुरी थोड़े है।

द्वार तक पहुँच कर भी भीतर न जा सका। मन एकदम इन्कार ही कर बैठा। आजीवन मुषी जी को जिस रूप में देखा है, मन के भीतर वही रूप क्यों न अंकित रहने दूँ? आज के इस ंपत ंज भ्तमकता ही क्या है?

भैया भी चुपचाप बाहर के ही चबूतरे पर पैर लटका कर बैठ गये थे। रात को मुषी जी की मष्त्यु के दस–बीस मिनट पहले वे वहाँ से हट आये थे इसलिए किसी व्यक्ति ने बताया कि मरने के कुछ पहले मुंषी ने बड़े जोर से कहा था 'मैथिलीषरण! मैथिलीषरण!' न जाने, वह जाने वाली आत्मा उस समय क्या सोच रही थी, न जाने कौन सी बात, न जाने कौन सा रहस्य कहने के लिए उसके भीतर ही रह गया, निर्मल मष्त्यु ने उसे प्रकट नहीं होने दिया।

देखता हूँ मुंषी जी का कनिश्ठ पुत्र आकर सहसा भैया के पैरों में चिपट गया है। रोते–रोते उसने कहा–क्या करूँ दद्दा, क्या करूँ? कैसे सहूँ मेरी तो छाती फटी जा रही है। लोगों ने देखा– भैया का धीरज भी उनका साथ नहीं दे रहा है। उन्होंने कहा– भैया, धीरज धर, हिम्मत नहीं खोनी चाहिए धीरज खोना तो नहीं चाहिए, परन्तु ऐसे जन से किसी को क्या धीरज मिल सकता जिसका कंठ अपने में न हो, जिसकी आँखें स्वयं ही आँसू बरसा रही हों।

मुंषी जी के तीन पुत्र हैं। तीनों ही पूर्ण वयस्का ज्येश्ठ पुत्र ऐसा ही था, जैसे कोई बात उसके कान में ही न जाती। मध्यम को इधर–उधर के काम में योग देना पड रहा था। योग देने की एक ऐसी असाहयता होती है। कनिश्ठ की हालत वैसी ही थी। विचित्र विक्षिप्तता थी। तीनों के तीनों जैसे एक ही षोक के तीन विचित्र चित्र हो, सोचा यहाँ से हटकर मुषी जी के ही दर्षन क्यों न कर लूँ। यह दर्षन षिश्टाचार का दर्षन नहीं सचमुच दर्षन ही था।

भीतर जाकर षुक कर प्रणाम किया पैर हुए परन्तु उनके मुख की ओर न देख सका। किसी तरह वहाँ आँखें ठहरी ही नहीं। इसी समय देखा, बड़ी लड़की अन्तिम दर्षन की बात सुनकर बेहोष हो गयी है। अर्थी उठी! बहुत बड़ी संख्या में हिन्दू और मुसलमानय सबके सब षोकमग्न, सिर झुकाए हुए, चुपचाप ! यह मौन है किसलिए? क्यों नहीं आज झालरें और घण्टे बजते हैं, क्यों नहीं आज षंख जीवन का विजय घोश कर उठता है? आज एक षुद्धात्मा हंसता– हंसता अपनी

इहलीला पूरी करके उस लोक को जा रहा है। ऐसे में भी मंगल घोश न होगा तो और कब होगा? परन्तु मुसलमानी धर्म में यह सब अषास्त्रीय हैं, हाँ, षोक विधि ा षोक के साथ ही हो। जाने वाली आत्मा को अब इन बातों से कुछ प्रयोजन नहीं रहा ।

अर्थी उस घर के फाटक के सामने पहुँची जिसकी ओर से मुँह फेरकर मुंषी जी कभी नहीं गएय जिसके भीतर जाने के लिए मुंषी जी को आंधी में, पानी में, उजले दिन में, और घोर अंधेरी रात में कभी समय–असमय नहीं था। वह फाटक जिसमें आज उनके चले जाने पर भी प्रायः मुझे अनुभव होता है कि अपना ऊँचा बल्लम लिए, खादी के कुरते पर खादी का ही साफा बाँधे हुए वे प्रवेष कर रहे हैं और थोड़ी देर में ही हंसते–हंसते हम लोगों के सामने बल्लम टेकर आ खड़े होंगे! वह फाटक भी पीछे छूटा वहाँ एक बालक अर्थी देखकर इतना विकल हो उठा कि उसे संभालना कठिन था। रो ले भाई, तू भी रो लें! उस सुखद गोद में तू हंसा खेला भी तो कम नहीं है।

कब्रस्तान में उसी जगह से मिली हुयी कब्र खोदी गयी थी जहाँ बीस–बाइस वर्श पहले मुंषी जी हमारी भाभी को सुला आये थे। पत्नी के बगल में आज निरसंकोच सो सकने के लिए ही मुंषी जी ने दोबारा विवाह नहीं किया था। वहाँ खादी की षुभ्र चादर पर लिटा दिये गये। भैया जनकपुर और अयोध्या की तीर्थ मृतिक, रेणुका और गंगाजल साथ ले गये थे। उसे चढ़ाने के लिए मुसलमान भाइयों ने ऐतराज नहीं उठाया भैया ने उसे मुझे सौंपते हुए कहा– लो चढ़ा आओ। मैनें यंत्र चलित की माफिक सब काम कर दिया।

भैया भी मिट्टी देकर आयो उन्होंने कहा– देखा तुमने अजमेरी की ओर ? जैसे उन्होंने इस ओर इस लोक से दर्षश्ट फेर ली हो। कहीं दूसरी ओर ? उनका ध्यान चला गया है, षांत, गंभीर, किन्तु कितनी आत्म गौरव मंडित वह आकृति है! यहाँ उस मूर्ति को जैसे अब कोई प्रयोजन नहीं रहा । ग्रीश्म की लू प्रखर हो रही थी। वष्क्ष सरसराहट के साथ साँ–साँ करते दिखाई दिये। इधर यह दूर तक फैली हुयी पक्की सड़क सूनी–सी दिखाई दे रही है। उसके बाद वह कुआँ, फिर वे वष्क्ष, उनके भी बाद आकाष में घुली मिली दूर की पहाड़ियों की वह नीलिमा । कहीं कुछ नहीं। इतने अधिक जनसमूह के साथ भी हम सब लोग अकेले पड़ गये हैं।

मुंषी जी को मनों मिट्टी के नीचे छिपाकर हम सब लोग लौट पड़े।

सत्य अपने स्वाभाविक रूप में ही कितना मनोहर हो सकता है, यह बात मुंषी जी से समझना चाहिए। ऐसा ही कुछ श्रद्धेय भाई साहब रायकृश्णदास जी ने एक बार

मुंषी जी के सम्बन्ध में लिखा था। सत्य सदैव मनोहर ही नहीं, वह भयंकर कठोर भी है। आज के दिन यह भी मुंषी जी ने ही प्रकट कर दिया।

7. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

(भेंट–वार्ता)

पद्मसिंह षर्मा 'कमलेष'

दिसम्बर मास में एक प्रातःकाल नौ बजे जब मैं निराला जी के यहाँ पहुँचा और दरवाजे पर दस्तक दी तो मन में संकोच भी था, और भय भी। संकोच इसलिए कि मेरा उनका साधारण सा परिचय था और भय इसलिए कि इतने बड़े साधक के यहाँ बिना सूचना दिये पहुँच जाना अनुचित है। लेकिन विवष्ता थी इलाहाबाद पहुँच गया था और ठहरना भी कहीं था। दारागंज के इक्के के अड्डे पर पहुँचा तो कुछ देर सोचने के बाद यही ठीक समझा कि निराला जी का ही पता पूछा जाय। यों वहाँ और भी स्नेही और कृपालु मित्र हैं पर उस समय आसानी से पता लग सकता था, तो इसी कलाकार का। इसलिए इक्के से उतरकर एक दूधवाले से पूछा तो उसने निराला जी के घर का पता बता दिया और संकोच और भय से भरा उनके द्वार पर निराला जी ने बिस्तर ऊपर ले आने का आदेष दिया। मैने पहले उनकी पद–रज ली और फिर बिस्तर उठाकर ऊपर ले गया। जैसे ही ऊपर पहुँचा वे बोले दृ 'देखो वह झाड़ू है इन कोनों को झाड़ लो और यहीं बिस्तर लगा लो षाम को तख्त बिछा लेना।' मैने तत्क्षण उनकी आज्ञा का पालन किया। जा पहुंचा। दरवाजा खटखटाने के दो मिनट बाद ही द्वार खुला

3 बिस्तर ठीक–ठाक करके मैं बाहर खुली छत पर आया। छत पर एक तख्त पड़ा था, जो छत ही की तरह बीच में से झुका था। निराला जी उसी के पास बैठे प्याज काट रहे थे और मैं उनके घर को देखने लगा था। घर क्या है, सौ– सवा सौ वर्श पहले की भवन निर्माण का नमूना है। उसके दो हिस्से हैं। आगे बाल हिस्से में खपरैल पडी है और उसमें उनके मालिक एक पण्डित जी रहते हैं जो स्वयं अकेले हैं। रात को बहुत देर तक वे सितार बजाया करते हैं। पीछे के हिस्से में निराला जी रहते हैं। उसके पास एक कोठरी है। उसके आगे एक कोठा है और उस कोठे से सटी एक तंग रसोई है। जिसमें बाँस की जाफरी (टट्टी) लगी है। निराला जी के कोठे से ही लगा जीना है। आँगन बहुत छोटा है, जो षायद वर्शों से धुला नहीं है। दीवारों पर मिट्टी की पुताई है, सफेदी की नहीं। नीचे के हिस्से को देखने से पता चलता है, मानो उसकी स्थिति ऊपर की स्थिति को बनाये रखने के लिए ही है, कोई और उपयोग उसका नहीं। हाँ, गर्मियों में निराला जी नीचे की एक कोठरी का उपयोग कर लेते हैं, जिसमें उनकी कुछ पुस्तकें रखी हैं। नीचे के हिस्से ही की क्या, मुझे तो ऊपर के हिस्से की भी स्थिति कुछ ठीक नहीं

जान पड़ी। वह इसीलिए कि उसका निवासी उसमें एक बिरागी की ही भाँति रहता है जिस कोठरी में यह स्वयं रहता है उसके एक कोने में मिट्टी के तीन–चार बर्तन रखें जिसमें से एक में आटा है, एक में दाल। बाकी खाली पड़े हैं। दो–तीन ईंटो के टुकड़े हैं जो इन बर्तनों के जमाने के काम आते हैं। सूखी सी दवात और टूटा–सा होल्डर है, जिससे यह कलाकार – कलाकृतियों की रचना करता है। दो–तीन बांगला, अंग्रेजी और उर्दू की पुस्तकें हैं, एक–दो मासिक और साप्ताहिक पत्र भी बिखरे पड़े है। एक और छोटा–सा ट्रक है, जिस पर 'अपरा' (निराला जी का नया काव्य–संग्रह) के फार्म रखे हैं। एक खूँटी पर खादी का पुराना कुर्ता टंगा है। एक दूसरे कोने में पुराने जूते रखे हैं। सामने की खिड़की में कड़वे तेल का एक दीपक है, जिसके पास ही तेल की एक षीषी है जो खाली पड़ी है। कोठरी के ठीक बीच में एक पुराना फटा–सा गूदड़ है, जिस पर षक्तिषाली कलाकार रैन बसेरा करता है। यह तो उसकी कोठरी की हाल है। कोठा भी ऐसा ही है। उसकी छत भी नीचे झुकी है और कड़ियाँ नीचे निकली हुई हैं। उसमें किसी आले में नक है, किसी में मिर्च और किसी में प्याज और लहसुन की दो–एक गाँठे । एक अलमारी में दो बर्तन हैं। जिनमें एक घी का है और दूसरे में चूना भीग रहा है, जिसके पास ही पत्ते का तम्बाकू भी रखा है। चौके का भी यही हाल है। फर्ष सब कच्चा है। यों पूरा घर उस कलाकार की लापरवाही की ओर संकेत करता है। ठीक भी है, जिसने दुनिया की कोई परवाह भी नहीं की, उसे ठुकरा दिया वह उस घर की क्या चिन्ता करे।

इस प्रकार मैं घर का निरीक्षण कर रहा था और उसकी जीर्ण–षीर्ण स्थिति से हिन्दी के उस गौरवषाली कलाकार के व्यक्तित्व को मिलाकर आष्चर्य कर रहा था कि निराला जी ने कहा– 'मैं बहुत थक गया हूँ। बाजार से जाकर आलू, टमाटर और हरी मिर्च ले आओ। तुम्हारे लिए तक तरकारी और बन जायेगी।' और मेरे हाथ में एक दुअन्नी रख दी। मैं चाहता था कि उन्हें मना करूँ और कहूँ कि मेरे लिए अलग तरकारी की आवष्यकता नहीं है, पर उनकी आदत जानता था, वे अपनी बात में संषोधन और विरोध नहीं सह सकते। इसीलिए सीधा बाजार चला गया और तरकारी लाकर उन्हें दे दी। उस समय दस बजे थे।

निराला जी चौके में थे। दाल, तरकारी और रोटियाँ बना रहे थे। मैने इसी बीच में स्नान किया, कपडे धोये और आकर धूप में बैठ गया। मैने उनसे कहा कि मैं रोटी बना सकता हूँ पर उन्होंने मुझे वैसा नहीं करने दिया और स्वयं ही गीली लकड़ियों से रोटियाँ बनाते रहे। बीच में एक बार उठकर आये और एक गजल नकल कराकर 'नया–साहित्य' बम्बई को भिजवाई।

इसके बाद फिर चौके में चले गये। ठीक 5–6 घंटे बाद यानी 4 बजे खाना तैयार हुआ। पहले मुझे और श्री अनिलकुमार मुखर्जी (प्रसिद्ध देष–सेवी बंगाली और निरालाजी के पड़ौसी) को खिलाकर स्वयं खाया। उसके बाद मुझे षहर घूमने का आदेष दिया और एक नका भी बना दिया ताकि मैं भूल न जाऊँ ।

षाम को करीब 7–8 बजे मैं लौटा, तो देखा इंतजार कर रहे थे। देखते ही बोले "आओ पहले खा लो। दो रोटियाँ रखी हैं एक तुम लो, एक मैं। खाने के बाद नींद अच्छी आयेगी।'

दोपहर को इतना खाया था कि पेट में जगह न थी। फिर भी 'ना' न कर सका और चुपचाप रोटी निगल गया।

दूसरे दिन 6 बजे उनकी कोठरी के किवाड़ खुले। वे घूमने के लिए जा रहे थे। मैं भी उठ बैठा। बोले–'नींद आई।' मैनें कहा 'बहुत अच्छी तरह' और साथ चल दिया। उस समय उनके सिर पर एक पुराना ऊनी टोप था। बदन पर चार–पाँच साल पहले का एक फटा कोट था, जिसे वह रात को ओढ़कर सोये थे। कमर में तहमद था मैला–सा और पैरों में सवा रुपये वाले बाटा के गेंहुआ रंग के फ्लीट जूते, जिनका पिछला हिस्सा गायब था और निसे बिबाइयों से भरी एड़ियाँ बाहर निकल रही थीं। हिन्दी का युग–प्रर्वतक कवि निराला और इस वेश में! कौन कल्पना कर सकता है कि उसके पास जाड़े के कपड़े न होंगे? वह हाथ से खाना पकाता होगा और बीमारी में पानी के घूँट के लिए तरसता रह जाता होगा।

मैं यह सब सोच रहा था कि चाय वाले की दुकान आ गई। हमने एक–एक कुल्हड चाय ली और गंगा के बाँध की ओर चल दिये। रास्ते में निराला जी मौन–गम्भीर चले जा रहे थे, अपने में डूबे। गंगा बाँध पर आये तो उदय होते हुए सूर्य की तरफ देखते हुए रह गए। कुहरा उन किरणों के कारण कुछ कम हो रहा था। वे गंगा, उसके कछार और उस पर कुहरे को चीरती रष्मियों के सौन्दर्य को देखकर बोले–" इलाहाबाद बहुत सुन्दर षहर है इना अच्छा दृष्य अन्यत्र नहीं मिल सकता। सुबह तो है ही, लेकिन इलाहाबाद की षाम भी बहुत अच्छी होती है। षाम को दूसरे बाँध पर चलेंगे।'' और इतना कहकर चुप हो गए। यहाँ मैं उनसे कुछ प्रष्न पूछना चाहता था, पर उनके व्यक्तित्व की गम्भीरता और मनःस्थिति के कारण कुछ नहीं कह पाता था। लौटते समय प्रगतिषील साहित्य की बात चली तो वे स्वयं कहने लगे–'प्रतिवाद पर सबसे पहले मैंने लिखा है, इसे कोई नहीं जानता। किया क्या जाय दुनिया ऐसी है, जो बिना त्मअवसनजपवद के नहीं मानती। मै घर चलकर तुम्हें कुछ दिखाऊँगा।

इसके बाद हम लोग फिर चाय वाले की दुकान पर थे और कुल्हड़ हमारे हाथ में थे। दूसरा चक्कर हमने गंगा–किनारे का लगाया। उसके बाद घर आकर द्वार

के सामने पडे तख्त पर बैठ गए। थोड़ी देर में एक बंगाली महाषय आ गए। उनसे बातचीत करते–करते निरालाजी फिर चाय वाले के पास आए। मैं भी पीछे–पीछे था। चाय में अबकी बार बंगाली महाषय भी सम्मिलित थे। इतने में एक ग्वाला, जो निरालाजी को दूध देता था है मिला, उससे दूध की बातचीत करके निरालाजी ने मुझसे कहा– '' जाओ कसकर एक सेर दूध पी आओ।''

मुसीबत–पर–मुसीबत।

तीन कुल्हड़ चाय, उस पर एक सेर दुध मुसीबत पर मुसीबत। मैं चुपचाप ग्वाले के पीछे–पीछे चल दिया। वह कह रहा था– बाबूजी, निरालाजी महात्मा हैं। दूध देने जाता था कभी–कभी उन्हें पीने की याद ही न रहती थी, रखा रह जाता था, बन्द कर देगा। मुझे उनके पैसे थोड़े ही खराब करने हैं।'' और घर पहुँचकर भैंस का सेर भर धारोश्ण दूध एक लोटे में मुझे लाकर दे दिया। मैं खड़े–खड़े ही पी गया और लौटकर घर चला गया।

थोड़ी देर में निराला जी आये और चौके में चले गए। आज मेरे कहने पर उन्होंने रोटियों मुझे बना लेने दी। लेकिन सेंकने का काम उन्होंने ही किया। स्वयं चूल्हे के सामने बैठ गए और चूल्हा फूँकने लगे। उनके सिर में राख के कण भर गए, पर इस ओर से उदासीन हुए रोटियाँ संकते रहे। दो घंटे में खाना बनकर तैयार हुआ। इसके बाद मेरे लिए उन्होंने एक अखबार बिछा दिया, जिसने आसन का काम दिया, और थाली में रोटियाँ और तरकारी रख दी। स्वयं जमीन पर ही बैठे–बैठे हाथ में रोटी लेकर खाने लगे और बोले–"वर्शों तक साहित्य–साधना में मेरा यह भोजन रहा है। यही मेरा असली भोजन है।

मैं उन बिना चुपड़ी पोटी रोटियों में उस कलाकार की साधना का तार देख रहा था। वही, हिन्दी की महान् षक्ति है। ऐसे चूल्हा फूँकता है, यह कभी न सोचा था। उसका जीवन एक मजदूर का–सा जीवन है। और वह मजदूर जो सर्वहारा हो। उन्हें उस समय देख मुझे श्रीमती महादेवी वर्मा की वह बात याद आ गई जो उन्होंने निराला जी के सम्बन्ध में कही थी। और वह थो– 'निरालाजी का जीवन निम्नतम स्तर के भारतीय का जीवन है और ऐसा जीवन बिताकर इतनी ऊँची साहित्य–साधना निरालाजी ही कर सकते हैं।

इसके पष्चात मैं घूमने चला और षाम को देर से लौटा तो हवा में सूखी रोटियाँ मेरा इन्तजार कर रही थी। मैने उनसे प्रार्थना कर न खाने की इच्छा प्रगट की और चुपचाप लेटा रहा। कल सकर की कान के कारण नींद आ गई थी, इसीलिए रात को कोई होष न रहा, लेकिन आज नींद नहीं आ रही थी। 11 बजे थे। निरालाजी अपनी कोठरी में थे, एकाएक उनके आठो से हँसी फूट पड़ी, जो कोठरी में गूँज गई वह कलाकार की लापरवाही थी, अन्धकार में व्यक्त हो रही। मैने ऐसी

हँसी कभी न सुनी थी। उसका मर्म उनके अतिरिक्त कौन समझ सकता है? उसके बाद उन्हें बाहर खुली छत पर और भीतर कमरे में भी घूमते देखा। जब वे घूम रहे थे तब उनके कदमों की धमक से सारा घर हिल रहा था और बेचौन षेर की भाँति चक्कर लगाते हुए इस कलाकार को देखकर मुझे गीता की पंक्ति स्मरण हो आई, जिसमें संयमी व्यक्ति का लक्षण दिया गया है—

'या निषा सर्व भूतानां तस्याम् जागर्ति संयमी ।'

यही क्यों, मुझे तो ऐसा लगा कि निराला जी के ऊपर सैकड़ों संयमी और महात्मा न्योछावर है। कारण गंगा के घाट वाले पाण्डे का कहना है कि निराला महात्मा है। कोई भी तो ऐसा न मिला जो उनके महात्मापन का समर्थक न हो। यह सब सोच रहा था और निरालाजी की महत्ता पर विचार कर रहा था कि नींद आ गई। तीसरे दिन उठा तो मुँह से निकल गया कि मुझे बुखार आ गया है। इस बात के निकलने कारण था। पिछले दिन उन्होंने इतना खिलाया था कि मैं ही क्या कोई भी मेरी जगह होता तो. उसका पेट पत्थर हो जाता। मुझसे उनके आतिथ्य का अतिरेक सहन न हुआ और हरारत हो आई इसीलिए इस डर से कि कल की पुनरावत्ति न हो, मेरे मुँह से यह षब्द निकल आए। इस पर निरालाजी बोले— 'आज खाना मत खाओ, चाय भी बन्द रखो। आराम से लेटे रहो। चाहो तो दूध ा पी लेना। बस ।'

इच्छा न थी पर यह सोचकर कि जीवन में इस महान साधक का साथ न जाने फिर कब हो, घूमने चल दिया। चलते समय वह स्वयं मेरे लिए दूध लाये और उसे रखकर फिर घूमने निकले। आज गंगा के पुल के पार तक घूमने गए और लौटकर बोले— तुम थक गए होगे। आराम करो। मैं एक चक्कर और लगा आऊँ। वे घूमने चले गए और मैं घर आकर सो गया। दोपहर के लगभग निराला जी आये, और आते ही मुझे दो आने की लकड़ी लाकर दूध गरम करने की आज्ञा दी। मैं इस बात से बहुत प्रसन्न हुआ। इसका कारण यह था कि टाल वाला उन्हें गीली लकड़ियाँ देता था। मैं गया तो सूखी लकड़ियाँ लाया। लकड़ी लाकर मैंने दूध गरम किया और पीकर अखबार पढ़ने लगा।

निराला जी ने आज कुछ न खाया था। दूध के लिये मैने कहा तो मना कर दिया। तीन चार बजे के लगभग उन्होंने कहा— 'मूँग की दाल और रोटी बनाता हूँ। भूख हो तो खा लेना।'

वे चौके में थे कि एक प्रकाषक आ गए। वे निराला जी का एक उपन्यास छाप रहे थे। नाम है 'काले कारनामे'। उसमें समाज और राजनीति का खोखलापन दिखाया गया है। उसकी भाशा षैली की प्रषंसा करते हुए वे लिखने लगे—

'निरालाजी धीरे–धीरे लिख रहे हैं। 'मूड़' में आकर लिखते हैं। एक लेखक भी दे रखा है। लेकिन चीज ऐसी है, जो बे–जोड़ होगी।'

इसी समय गम्भीर होकर निरालाजी ने कहा– 'साहित्य साधना से बनता है। हमें केवल रुपया तो कमाना नही है। साहित्य ऐसा देना है, जो जनहित का हो और उसमें कुछ जान हो, पर लोग समझते ही नहीं। '

इधर–उधर की कुछ बातचीत हुई और प्रकाषक महाषय चले गए। निरालाजी ने मुझे बुलाया और लाख मना करने पर भी मेरे आगे दो रोटियाँ और दाल रख दीं। जैसे–तैसे उसे समाप्त किया। थाली खाली देखते ही वे बोले– एक रोटी और है। यदि पेट में जगह हो तो ले लो, नुकसान नहीं करेगी।' और यह कहते–कहते मेरी थाली में रख दी। उनका प्रेमपूर्ण आग्रह देख मैं उसे भी खा गया।

रात हो गई थी। मैं लेटा था और बेचौन षेर की तरह निराला जी का अधेरे में घूमना और हँसना उसी प्रकार जारी था। उस समय समाज और साहित्य के तथाकथित कर्णधारों के प्रति मेरे ह्रदय मैं घृणा का तूफान उठ रहा था। इस स्थिति में पता नहीं कब मुझे नींद आई।

इकाई – 14 सियाराम शरण गुप्त पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश हरिशंकर परसाई

चौथे दिन देखा, देर काफी हो गई है सूरज निकल आया है। निरालाजी की कोठरी के किवाड़ नहीं खुले हैं। सोचा, कई दिन में उन्हें नींद आई है, इसलिए षायद आज वे नहीं उठे हैं। थोड़ी देर प्रतीक्षा करने के बाद मैं एक चिट पर यह लिखकर कि मैं महादेवी जी के यहाँ जा रहा हूँ आप फिक्र न करें, चल दिया। 4–5 घण्टे में मैं महादेवी जी के यहाँ से लौटकर आया तो मैनें उनसे कहा– 'मुझे बनारस जाना है। आज आपसे विदा लूँगा।'

यह सुनकर वे बोले–अच्छी बात है। बिस्तर बाँध लो और देखो खिचड़ी बनाई है, भूखे हो तो खा लो। '

मैंने उनसे कहा कि मैं खाकर आया हूँ और बिस्तर बाँधने लगा और जैसे ही बिस्तर बाँधकर ठीक किया, उन्होंने कहा– यह साबुन तो रख लो।' और साबुन की आधी बट्टी उन्होंने मेरे हाथ पर रख दी।

यह देखकर मैं दंग रह गया। उस समय मेरे ह्रदय में उनके प्रति जो भाव थे उन्हें मैं व्यक्त नहीं कर सकता। साबुन की आधी बट्टी कपड़े धोने से बच गई थी। उसे भी उन्होंने लौटा दिया। दूसरे की चीज रखने में ऐसा सजग (ब्वदेबपवने) व्यक्ति मैने दूसरा नहीं देखा। तभी मैं यह रहस्य समझा कि मेरे कम्बल को लेने से इन्होंने क्यों इन्कार कर दिया था और क्यों भयंकर सर्दी में अपने उस फटे कोट में लिपट कर वे सो गए थे। मैनें बट्टी चुपचाप थैले में रख ली और उनके चरण छूकर विदा माँगी।

इन चार दिनों में मैं इलाहाबाद के दर्जनों साहित्यकारों से मिला। परन्तु सबने एक ही प्रष्न पूछा कि निराला जी कैसे हैं? उनके प्रष्न को सुनकर मैं षर्म से गड़ गया और क्षुब्ध होकर मैने सबसे यही कहा– 'आष्चर्य है, आप इलाहाबाद में रहते हैं और मुझसे पूछते हैं कि निरालाजी कैसे हैं? लेकिन इसका उनके पास कोई उत्तर न था। वह उपेक्षा ही उनके पास थी, जो उन्होंने अब तक निराला जी के प्रति दिखाई है। उनके इस व्यवहार से मुझे इस बात का अनुमान हो गया कि हिन्दी वाले अपने कलाकारों का कितना आदर करते हैं उसी समय मुझे हिन्दी के लेखकों के दुर्भाग्य का भी अनुभव हुआ और मैंने सोचा कि निराला जी की वर्तमान स्थिति के लिए जिम्मेदार हम हैं, जो उनकी कद्र नहीं करते। एक ही षहर में रहकर अपने एक कलाकार के विशय में लोग इतने उदासीन रहें, इसका अनुभव मुझे पहले कभी न हुआ था। अपनी बात तो मैं कहता हूँ कि जब इलाहाबाद को चला था तब सोचता था कि वहाँ त्रिवेणी संगम है, हाईकोर्ट है, यूनिवर्सिटी है, 'लीडर' और 'अमृत बाजार पत्रिका' के प्रेस हैं, गरज यह कि आर्कशण के सैकड़ों साधन है। परन्तु जब निराला जी का व्यक्तित्व देखा, मैं सब कुछ भूल गया। उनसे कोई साहित्य–चर्चा न हुई, पर निकट रहकर उनके जीवन से जो सौखा–समझा, वह मेरे लिए जीवन में साधना पथ के पाथेय का काम देगा। मेरा विष्वास है कि हमें निराला जैसा कलाकार चाहे मिल जाय, पर निराला जैसा मानव नहीं मिल सकता। हिन्दी का यह गौरवषाली कवि युग युग तक अमर रहे।

8. आँगन में बैगन (हास्य व्यंग्य)

हरिषंकर परसाई

मेरे दोस्त के आँगन में इस साल बैंगन के फल आये हैं। पिछले कई सालों से सपाट पड़े आँगन में जब बैंगन का फल उठा तो ऐसी खुषी हुई जैसे बाँझ को ढलती उम्र में बच्चा हो गया हो। सारे परिवार की चेतना पर इन दिनों बैंगन सवार है। बच्चों को कहीं दूर पर भी बकरी दीख जाती है, तो समझते हैं कि वह हमारे बैंगन के पौधे को खाने के बारे में गम्भीरता से विचार कर रही है। वे चिल्लाने लगते हैं। पिछले कुछ दिनों से परिवार में बैंगन की ही बात होती है। जब भी जाता हूँ, परिवार की स्त्रियाँ कहती हैं– खाना खा लीजिए। घर के बैंगन बने हैं। जब वे ' भरे भटे' का अनुप्रास साधती हैं, तब उन्हें काव्यरचना का आनन्द आ जाता है। मेरा मित्र भी बैठक से चिल्लाता है– 'अरे भई बैंगन बने हैं कि नहीं? मुझे लगता है आगे से मुझसे 'चाय पी लीजिए' के बदले कहेंगी – 'एक बैंगन खा लीजिए। घर के हैं।' और तष्तरी में बैंगन काटकर सामने रख देंगी। तब मैं क्या करूँगा ? षायद खा जाऊँ, क्योंकि बैंगन चाहे जैसा लगे

भावना स्वादिश्ट होगी और मैं भावना में लपेटकर बैंगन की फाँक निगल जाऊँगा। ये बैंगन घर के हैं और घर की चीज का गर्व विषेश होता है। अगर वह चीज घर में ही बनाई गई हो, तो निर्माण का गर्व उसमें और जुड़ जाता है। मैने देखा है, इस घर के बैंगन का गर्व स्त्रियों को ज्यादा है। घर और आँगन में जो है वह स्त्री के गर्व क्षेत्र में जाता है। इधर बोलचाल में पत्नी को 'मकान' कहा जाता है। उस दिन मेरा एक दोस्त दूसरे दोस्त को सपत्नीक भोजन के लिए निमंत्रित कर रहा था। उसने पूछा– 'हाँ, यह तो बताइये आपका मकान गोष्त खाता है या नहीं ?' पत्नी अगर 'मकान' कही जाती है, तो पति को 'चौराहा' कहलाना चाहिए। दोनों की पलियाँ जब मिलें तो एक 'मकान' दूसरे के 'मकान' से पूछ सकता है– 'बहन तुम्हारा चौराहा षराब पीता है या नहीं?''

लोग पान से लेकर बीवी तक घर की रखते हैं। इसमें बड़ा गर्व है और बड़ी सुविध ाा है। जो चाहा तब पान लगाकर खा लिया। और जी हुआ तब पत्नी से लड़कर जीवन के कुछ क्षण सार्थक कर लिये। कुछ लोग मूर्ख भी घर में रखते हैं । और मेरे एक परिचित जो जुआड़ी भी घर में रखते हैं। दीवाली पर अपने बेटों के साथ बैठकर जुआ खेल लेते हैं। कहते हैं– 'भगवान की दया से अपने चार बेटे हैं, सो घर में ही जुआ खेल लेते हैं।'

घर की चीज आपत्ति से भी परे होती है। आदमी स्वर्ग से इसलिए निकाला गया कि उसने दूसरे के बगीचे का सेव खा लिया था। माना कि वह बगीचा ईष्वर का था, पर फिर भी पराया था। अगर यह सेव उसके अपने बगीचे का होता, वह एतराज करने वाले से कह देता– 'हाँ, हाँ खाया तो अपने बगीचे का ही खाया। तुम्हारा क्या खा लिया ?' विष्वामित्र का वैसा, मामला अगर घर की औरत से होता, तो तपस्या भंग न होती। वे कह देते– 'हाँ जी, हुआ। मगर वह हमारी औरत है। तुम पूँछने वाले कौन होते हो ?' अगर कोई अपनी स्त्री को पीट रहा हो और पड़ोसी उसे रोकें, तो वह कैसे विष्वास से कह देता है– 'वह हमारी औरत है। हम चाहे उसे पीटें, चाहे मार डालें। तुम्हें बीच में बोलने का क्या हक है।' ठीक कहता है वह ! वह कद्दू

काटता है, तब कोई ऐतराज नहीं करता, तो औरत को पीटने पर क्यों एतराज करते हैं?

जैसा कद्दू वैसी औरत। दोनों उसके घर के हैं। घर की चीज में यही निष्चिन्तता है उसमें मजा भी विषेश है। घर के बैंगन चाहे बाजार के बैंगन से घटिया हो, पर लगते अच्छे स्वादिश्ट हैं। घर के हैं न। मैने लोगों को भयंकर कर्कषा को भी प्यार करते देखा, क्योंकि वह घर की औरत है।

वैसे मुझे यह आषा नहीं थी कि यह मेरा दोस्त कभी आँगन में बैंगन का पौधा लगायेगा। कई सालों से आँगन सूना था। मगर मैं सोचता था में गुलाब, बैंगन और भिण्डी जैसे पौधे को वह अपने आँगन में जमने नहीं देंगे। पर इस साल जो नहीं होना था, वह हो गया। बैंगन लगा और वह रुचि से खाया भी जाने लगा। मेरे विष्वास को यह दोस्त कैसे धोखा दे गया? उसने षायद घबराकर बैंगन लगा लिया। बहुत लोगों के साथ ऐसा हो जाता है। गुलाब लगाने के इन्तजार में साल गुजरते रहते हैं और घबराकर आँगन में बैंगन या भिण्ड़ी लगा देते हैं। मेरे एक परिचित ने इसी तरह अभी षादी की है—गुलाब के इन्तजार में ऊबकर बैंगन लगा लिया है।

चम्पा और चमेली के फूल ही खिलेंगे कि चाहे देर से खिल, पर इस आँगन

लेकिन इस मित्र की सौन्दर्य चेतना पर मुझे भरोसा था। न जाने कैसे उसके पेट से सौन्दर्य—चेतना प्रकट हो गयी। आगे हो सकता है, वह बेकारी को स्थापत्य कला का मानने लगे और तन्दूरी की भट्टी में उसे अजन्ता के गुफा चित्र नजर आयें।

श्रेश्ठ नमूना

इसे मैं बर्दाष्त कर लेता। बर्दाष्त तब नहीं हुआ जब परिवार की एक तरुणी ने भी कहा अच्छा तो हैं। बैंगन खाये भी जा सकते हैं।' मैंने सोचा हो गया सर्वनाषा सौन्दर्य, कोमलता और भावना का दिवाला पिट गया। सुन्दरी गुलाब से ज्यादा बैंगन को पसन्द करने लगी। मैने कहा— देवी, तू क्या उसी फूल को सुन्दर मानती हैं जिसमें आगे चलकर आधा किलो सब्जी 1 आए? तेरी जाति कदम्ब के नीचे खडी होने वाली है पर तू षायद हाथ में बाँस लेकर कटहल के नीचे खड़ी होगी । पुश्पलता और कद्दू की लता में क्या तू कोई फर्क नहीं समझती ? तू क्या वंषी से चूल्हा फूंकेगी? और क्या वीणा के भीतर नमक—मिर्च रखेगी?

तभी मुझे याद आया के अपने आँगन में तो कुछ भी नहीं है। दूसरे पर क्या हँसू? एक बार मैने गेंदे का पौधा लगाया था। यह बड़ा गरीब सर्वहारा फूल होता है। कहीं भी जड़ें जमा लेता है। मैने कहा 'हुजूर, अगर आप जम जाएँ तो खिल उठें तो मैं गुलाब लगाने की सोचूँ।' मगर वह गेंदा भी मुरझाकर सूख गया। उसका डण्ठल बहुत दिनों तक जमीन में गड़ा हुआ मुझे चिढ़ाता रहा कि गेंदा तो आँगन में निभ नहीं सका, गुलाब रोपनें की महत्वाकांक्षा रखते हो। और मैं उसे जवाब देता— 'अभागे मुझे ऐसा गेंदा नहीं चाहिए जो गुलाब का नाम लेने से ही मुरझा जाए। गुलाब को उखाड़कर वहाँ जम जाने की जिसमें ताकत हो, ऐसा गेंदा मैं अपने आँगन में लगने दूँगा।' मेरे घर के सामने के बंगले में घनी मेंहदी की दीवार—सी उठी है। इसकी टहनी कहीं भी जड़ जमा लेती है। इसे ढोर भी नहीं

खाते। यह सिर्फ सुन्दरियों की हथेली की षोभा बढाती है और इसलिए पषु तक के लिए बेकार इस पौधे की रूमानी प्रतिश्ठा लोक गीतों से लेकर नई कविता तक में है। तेल पॉलिस के कारखाने ने मेहदी की इज्जत अलबत्ता कुछ कम कर दी है। तो मैने मेहदी की कुछ कलमें आँगन में गाड़ दीं। दो–तीन दिन बाद आवारा डोरो ने उन्हें रौंद डाला। मैं दुखी था। तभी अखबार में पढ़ा कि किसी 'हाइड्रो इलेक्ट्रिक 'प्लाण्ट' का पैसा इंजीनियर और ठेकेदार खा गये और उसमें ऐसी घटिया सामग्री लगाई कि प्लाण्ट कट गया और करोड़ों बरबाद हो गये। जो हाल मेरे मेंहदी के प्लाट का हुआ वही सरकार के उस बिजली के 'प्लाण्ट' का हुआ दोनों को उजाड़ दोरों ने रौंद डाला। मैने इस एक ही अनुभव से सीख लिया कि 'प्लाण्ट' रोपना हो तो उसकी रखवाली का इन्तजाम पहले करना। भारत सरकार से पूँछता हूँ कि मेरी सरकार, आप कब सीखेंगी ? मैं तो अब 'प्लाण्ट' लगाऊँगा, तो पहले रखवाली के लिये कुत्ते पालूँगा। सरकार को मुष्किल यह है कि कुत्ते वफादार नहीं हैं। उनमें से कुछ आवारा ढोरों पर लपकने के बदले, उनके आस–पास दुम हिलाने लगते हैं फिर भी सरकार के प्लाण्ट तो जम ही रहे हैं और आगे जम जायेंगे। उसके आँगन की जमीन अच्छी है और प्लाण्ट सींचने को 45 करोड़ लोग तैयार हैं। वे प्लाण्ट भी उन्हीं के हैं। सरकार तो सिर्फ मालिन है। मेरे इस आँगन का अभी कुछ निष्चित नही है। बगल के मकान के अहाते से गुलाब की एक टहनी जिस पर बड़ा सा फूल खिलता है, हवा के झोंके से दीवार पर से गर्दन निकाल कर इधर झाँकती है। मैं देखता रहता हूँ। कहता हूँ– 'तू ताक चाहे झाँक। मैं इस आँगन में अब पौध नहीं रोपूँगा। यह अभागा है। इसमें बरसाती घास के सिवा कुछ नहीं उगेगा। सभी आँगन फूल खिलने लायक नहीं होते। फूलों का क्या ठिकाना ? वे गवारों के आँगन में भी खिल जाते हैं।' एक आदमी को जानता हूँ, जिसे फूल सूँघने की तमीज नहीं है। पर उसके बगीचे में तरह–तरह के फूल खिले हैं। फूल भी कभी बड़ी बेषर्मी लाद लेते हैं और अच्छे खाद पर बिक जाते हैं।

मेरा एक मित्र कहता है कि 'तुम्हारे आँगन में कोमल फूल नहीं लग सकते। फूलों के पौध चाहे किसी घटिया तुकबन्द के आँगन में जम जायें, पर तुम्हारे आँगन में नहीं लग सकते। वे कोमल होते हैं, तुम्हारे व्यंग्य की लपट से जल जायेंगे। तुम तो अपने आँगन में बबूल, भटकटैया और धतूरा लगाओ। ये तुम्हारे बावजूद पनप जायेंगे। फिर देखना कौन किसे चुभता है – तुम बबूल को या बबूल तुम्हें ? कौन किसे बेहोष करता है–धतूरा तुम्हें या तुम धतूरे को ?'

संदर्भ सूची:

प्रसाद, हज़ारीप्रसाद – निबंधप्रभा

मैथिलीशरण गुप्त – भारतभारती (गद्य की दृष्टि से संदर्भनीय)

पद्म सिंह शर्मा – हिंदी निबंध साहित्य का इतिहास

रामचंद्र शुक्ल – चिंतामणि

राहुल सांकृत्यायन – मध्य एशिया का इतिहास

अज्ञेय – त्रिशंकु

बाल मुकुंद गुप्त – हिंदी गद्य और उसके विविध रूप

अमृतलाल नागर – गद्य का समाजशास्त्र

डॉ. नगेन्द्र – हिंदी निबंध का विकास

आचार्य शिवपूजन सहाय – देवनागरी लिपि और हिंदी साहित्य

डॉ. नामवर सिंह – वाद, विवाद, संवाद

माखनलाल चतुर्वेदी – समर्पण के स्वर

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' – रचनात्मक निबंधों का संग्रह

जगदीश गुप्त – निबंध और विचार

भदंत आनंद कौसल्यायन – यात्रा वृतांत और वैचारिक गद्य

MATS UNIVERSITY

MATS CENTER FOR OPEN & DISTANCE EDUCATION

UNIVERSITY CAMPUS : Aarang Kharora Highway, Aarang, Raipur, CG, 493 441

RAIPUR CAMPUS: MATS Tower, Pandri, Raipur, CG, 492 002

T : 0771 4078994, 95, 96, 98 M : 9109951184, 9755199381 Toll Free : 1800 123 819999

eMail : admissions@matsuniversity.ac.in Website : www.matsodl.com